मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 17 ● वर्ष 2, अंक 9–10 ● नवम्बर–दिसम्बर 2012 ● पाँच रुपये ● सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

“बुरे पूँजीवाद” के ख़िलाफ़ “अच्छे पूँजीवाद” की टुटपूँजिया, मध्यवर्गीय चाहत

केजरीवाल की `आम आदमी पार्टी´ और भ्रष्टाचार–विरोधी आन्दोलन

मज़दूर वर्ग को इस छल से बचना होगा! हमें “सन्त” पूँजीवाद नहीं, पूँजीवाद का क्रान्तिकारी विकल्प चाहिए! और हमें इस विकल्प का खाका पेश करना ही होगा!

सम्पादकीय अग्रलेख

अन्ततः अरविन्द केजरीवाल एण्ड पार्टी (आम आदमी पार्टी!) ने संसद और विधानसभा के सुअरबाड़े में लोट लगाने की तैयारी कर ही ली। यह एक बहुत अच्छी बात है। क्योंकि पूँजीवादी चुनावी राजनीति के मलकुण्ड में उतरने के बाद केजरीवाल एण्ड पार्टी द्वारा देश की आम ग़रीब जनता के एक हिस्से में पैदा किये गये भ्रम का खुलासा और ख़ात्मा खुद-ब-खुद हो जायेगा। अण्णा हज़ारे और अरविन्द केजरीवाल के रास्ते अलग हो चुके हैं। केजरीवाल ने चुनावी राजनीतिक पार्टी बनाकर संसद और विधानसभा का रास्ता पकड़ने का फैसला किया है, जबकि अण्णा हज़ारे ने अपनी नयी टीम बनाकर अपना जनान्दोलन जारी रखने का फैसला किया है। हालाँकि अण्णा हज़ारे बहुत भ्रमित मानसिक अवस्था में प्रतीत हो रहे हैं। वह तय नहीं कर पा रहे हैं कि केजरीवाल की पार्टी का समर्थन करें या नहीं। दोनों के बीच के सम्बन्ध तय नहीं हैं। अरविन्द केजरीवाल अण्णा की इज़्ज़त करते हैं, और अण्णा बीच-बीच में केजरीवाल के बारे में कुछ शक़ अभिव्यक्त करते हुए दिन के अन्त में उनकी “ईमानदारी” में यक़ीन करते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि दोनों अलग-अलग तरह से अहम भूमिकाएँ निभा रहे हैं। और इन दोनों ही भूमिकाओं की आज की पूँजीवादी राजनीतिक व्यवस्था को ज़रूरत है। अगर केजरीवाल संसद में जाकर उसी प्रकार नंगे हो गये जिस प्रकार तमाम पूँजीवादी पार्टियों के नेता हैं, तो कम-से-कम पूँजीवादी व्यवस्था के पास एक भ्रष्टाचार-विरोधी धर्मयोद्धा अण्णा हज़ारे के तौर पर संसद के बाहर “जनान्दोलन” चलाते हुए मौजूद रहेगा, जो कि जनता को भ्रष्टाचार के नकली मुद्दे को लेकर बेवकूफ बनाने का काम करता रहेगा! फिलहाल, अरविन्द केजरीवाल ने राम की भूमिका अपना रखी है और उनके हनुमान, सुग्रीव, जामवन्त आदि मिलकर भ्रष्टाचारी रावणों, कुम्भकरणों, मेघनादों का पुतला-दहन करने में लगे हुये हैं! बीती रामलीला की तरह इस समकालीन रामलीला की भी मीडिया जमकर कवरेज कर रहा है। हर रोज़ केजरीवाल नये-नये बम फोड़ रहे हैं और सारे चैनलों पर छाये हुए हैं। कभी वह किसी नेता की बनियान उतार देते हैं, तो कभी किसी नेता की लंगोट खींच दे रहे हैं। लंगोट खींचने की इस कबड्डी में अब कुछ लोगों की नज़र केजरीवाल की लंगोट पर भी है, कुछ ने तो उसे छीन लेने के लिए हमले करने भी शुरू कर दिये हैं। भारतीय पूँजीवादी राजनीति का पूरा दृश्य इस समय देखने योग्य है!

अरविन्द केजरीवाल ‘मैं आम आदमी हूँ’ की टोपी लगाते हैं! यह भी एक मज़ेदार बात है। क्योंकि आम आदमी तो ऐसी कोई टोपी नहीं लगाता। इस देश के आम मेहनतकश ग़रीब का जीवन ही उसकी सच्ची तस्वीर पेश कर देता है। उसे यह यक़ीन दिलाने के लिए कि वह ‘आम आदमी’ है, किसी टोपी की ज़रूरत नहीं पड़ती! ऐसी टोपी की ज़रूरत उन्हें पड़ती है जो कि आम आदमी नहीं हैं, और आम मेहनतकशों को बेवकूफ़ बनाने के लिए आम आदमी दिखने का ढोंग कर रहे हैं। अरविन्द केजरीवाल की पार्टी के घोषणापत्र से भी साफ़ हो जाता है कि उनकी पार्टी वास्तव में खाते-पीते मध्यवर्ग की

(पेज 7 पर जारी)

मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के आह्वान पर दिल्ली में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के ऑटो मज़दूरों का जुझारू प्रदर्शन और सम्मेलन

मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आन्दोलन इलाक़ाई मज़दूर उभार की दिशा में

● अभिनव सिन्हा

पूँजी की एकजुट ताक़तों के ख़िलाफ़ लम्बे संघर्ष के तजुरबे के बाद अब मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का आन्दोलन सही दिशा में कदम उठा चुका है। पिछले वर्ष आन्दोलन के पहले दौर में मालिकान और प्रबन्धन के पक्ष का पलड़ा भारी रहा, और मज़दूरों के हाथ निराशा लगी; लेकिन मज़दूरों ने हार नहीं मानी। वे कारखाने के भीतर संघर्ष करते रहे और मज़दूरों की यही दृढ़ता प्रबन्धन को गवारा नहीं थी। नतीजतन, 18 जुलाई को एक षड्यन्त्र के तहत मारुति सुज़ुकी के मानेसर संयंत्र में तोड़-फोड़ और आगज़नी की घटना हुई; प्रबन्धन ने गुण्डों को कारख़ाने के भीतर बुलवाकर मज़दूरों पर हमला करवाया। मज़दूरों ने भी आत्मरक्षा के लिए कदम उठाये। इसी बीच रहस्यमय परिस्थितियों में एक सुपरवाइज़र की आग में जलकर मौत हो गयी। स्वतन्त्र और निष्पक्ष संगठनों की जाँच में जो नतीजे सामने आये हैं वे इस बात की ओर इशारा करते हैं कि इस अफ़सोसनाक घटना के पीछे भी प्रबन्धन की साज़िश थी। लेकिन कम्पनी, प्रबन्धन, केन्द्र और हरियाणा सरकार, और हरियाणा पुलिस प्रशासन ने तुरन्त ही मज़दूरों को दोषी ठहरा दिया। यही तो कम्पनी चाहती थी! और इसके बाद मीडिया भी मज़दूरों को ‘अपराधी’, ‘ख़ूनी’ और ‘वहशी’ करार देते हुए पूरे देश की जनता के बीच मज़दूर-विरोधी पूँजीवादी प्रचार में लग गया। पूरे देश में ऐसा माहौल पैदा किया गया कि कोई भी मज़दूरों के पक्ष के साथ हमदर्दी न रखे और पुलिस द्वारा उनके दमन और उत्पीड़न पर उँगली न उठाये। जब रास्ते के सारे रोड़े साफ़ कर दिये गये तो हरियाणा पुलिस ने गुड़गाँव-मानेसर को मज़दूरों के लिए एक यातना-शिविर में तब्दील कर दिया। आने वाले एक माह तक मज़दूरों की धरपकड़ जारी रही और 149 मज़दूरों को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद न्यायपालिका ने भी पूँजी का पक्ष लेते हुए मज़दूर नेताओं को पुलिस हिरासत में भेज दिया। पुलिस हिरासत में मज़दूर नेताओं को बर्बर यातनाएँ दी गयीं लेकिन वे टूटे नहीं और उनका हौसला बुलन्द रहा। सरकार ने 215 मज़दूरों के ख़िलाफ़ आरोप-पत्र तैयार किया और उन्हें बिना किसी जाँच-पड़ताल के ही कठघरे में लाकर खड़ा कर दिया गया। इस बात की कोई जाँच क्यों नहीं हुई कि 18 जुलाई के दिन कारख़ाने के अन्दर गुण्डे क्या कर रहे थे? इस बात की तफ्तीश क्यों नहीं की गयी कि संयंत्र के भीतर के सभी सीसीटीवी कैमरे बन्द क्यों कर दिये गये थे? प्रबन्धन का इरादा क्या था? जाहिर है कि 18 जुलाई को हुई घटना की साज़िशाना तैयारी मालिकान और प्रबन्धन ने पहले ही कर रखी थी। 21 सितम्बर को मारुति सुज़ुकी ने गाजे-बाजे के साथ अपना संयंत्र खोला, अखबारों में उसके विज्ञापन दिये और ऐलान किया कि उत्पादन शुरू हो गया है। लेकिन

(पेज 5 पर जारी)

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? (बारहवीं किस्त) 11
माँगपत्रक शिक्षणमाला–8 : स्त्री मज़दूरों की विशेष माँगें 7
भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलन पर तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी की रिपोर्ट 8
ग़रीबों की जान से खेलकर होती है दवाओं की परख 5

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

एक मजदूर से बातचीत

मैं बादली औद्योगिक क्षेत्र जी–1 दिल्ली में काम करता हूँ। आज सभी यही कहते हैं कि अगर तरक्की करनी है तो एक ही रास्ता है – कड़ी मेहनत, लगन, त्याग, ईमानदारी, हुनर आदि–आदि। जो लोग इन बातों का प्रचार–प्रसार जोर–शोर से करते हैं वे तो अपना दीन–धर्म बेचकर लगे हैं। लूटने, खसोटने डंडी मारने व दूसरों का हक़ छीनने, घपलों, घोटालों में उनके लिए कड़ी मेहनत और ईमानदारी यही है कि किस तरह एक दुकान से दो दुकान की जाये, एक मकान से दूसरा मकान, एक गाड़ी से दूसरी गाड़ी, एक फैक्ट्री से दूसरी फैक्ट्री व बैंक में लाख का 10 लाख कैसे बढ़ाया जाये इसमें वे दिन–रात, एक–दूसरे का गला काटने में लगे रहते हैं। मगर अफसोस तो तब होता है जब दुनिया को चलानेवाली सबसे बड़ी ताक़त मज़दूर वर्ग भी यही दलीलें पेश करने लगता है। और इस आदर्शवादी सोच के अलावा और कुछ नहीं सोचने की कसम खाकर लगा रहता है। और अपनी पूरी जिन्दगी किसी एक मालिक के हवाले कर देता है।

मेरी फैक्ट्री में कुल 12 लोग काम करते हैं। इसमें बैट्री बनती है। और मेरे दोस्त राकेश (जो इसी कारखाने में काम करते हैं) की भी यही राय है कि जिन्दगी में अगर आगे बढ़ना है तो एक ही रास्ता है कि पूरी लगन और ईमानदारी से काम करे और मालिक को हमेशा खुश रखे। मालिक अगर खुश रहेगा तो कभी निकालेगा नहीं। अब मान लो अपनी फैक्ट्री में बैटरी बनती है तो इसको हम पूरी तरह से सीख लें या कहीं भी किसी लाइन की कारीगरी सीख लें तो जिन्दगी बन जायेगी और मालिक भी आगे–पीछे तेल लगाता घूमेगा। मैंने उससे कहा कि तुम तो ऐसी बात कह रहे हो कि एक तुम ही हो जो मालिक तुम्हें तेल लगाते घूमेगा। और जो डिग्री–डिप्लोमा लिए घूम रहे हैं उनको तो कोई मालिक काम पर रखता ही नहीं क्योंकि उसे ज्यादा तनख्वाह देनी पड़ेगी, रही बात कारीगरी की तो मालिक हेल्पर रखना पसन्द करता है। 16 महीने में मालिक हेल्पर को कारीगर बना देता है और सालोंसाल हेल्परी की तनख्वाह पर ही मशीन चलवाता है। आये दिन मालिक जाने कितने कारीगरों को निकालते रहते हैं। निकालने का कारण पता लगता है कि कहीं प्रोडक्शन सही नहीं, तो कहीं माल खराब हो गया तो कहीं तनख्वाह बढ़ाने की माँग पर। उनके पास बहुत सारे बहाने होते हैं। और कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें मालिक निकाल नहीं पाते हैं। जैसे जिनका फण्ड, बोनस, ई.एस.आई. कार्ड, वेतन स्लिप वगैरह मिलती है जो स्थायी होते हैं तो उनको प्रलोभन देकर निकाल देते हैं। अभी मैं जिस फैक्ट्री में काम कर रहा हूं वहाँ मालिक ने खुले रूप से कह दिया है कि जो जाना चाहे अपना पूरा हिसाब लेकर हमारी तरफ से 20 हजार रुपये और ज़्यादा लेकर जा सकता है। वहाँ के एक सुपरवाइजर शकील ने जिसे अपनी लड़की की शादी करनी थी उन्होंने अपना पूरा हिसाब करके (कुल 90 हजार मिले) नये सिरे से नई भरती हो गये। अभी तक उन्हें 6400 रु. मिल रहे थे अब उसी काम के 4000 रु. पा रहे हैं।

साम–दाम–दण्ड–भेद जो तरीक़ा चले उन्हें चलाकर ये मालिक कारीगरों को निकालकर हेल्पर भरती कर रहा है। कारीगर महोदय अभी तक किसी एक पेशे के कारीगर हुआ करते थे। अब दर–दर की ठोकर खाकर घूम रहे हैं। अभी तक आराम के 7000 रुपये उठा रहे थे। अब हेल्परी के (3500–4000) रु. पा रहे हैं। मालिक तभी तक खुश रहता है जब तक उसको मुनाफा होता रहता है। तुम्हारी जी–हुजूरी से और बाबूजी–बाबूजी कहने से मालिक नहीं खुश होता है। किसी मजदूर को अगर बैठाकर तनख्वाह देनी पड़ जाये तो ज्यादा से ज्यादा कोई भी मालिक एक महीना तक तनख्वाह देगा उसके बाद भी अगर काम न आया तो फैक्ट्री में ताला डाल देगा। तुम चाहे कितने भी पुराने क्यों न हो। आज के दौर में अगर हमें ज़िन्दा रहना है तो मजदूर वर्ग के रूप में एकजुट होना होगा।

आनन्द, बादली, दिल्ली

मज़दूरों की लाचारी (मालिक भी खुश, मज़दूर भी खुश)

समयपुर, बादली में नेभको बैटरीज़ के नाम से एक कम्पनी है। इसमें न ही कोई सुपरवाइजर है, न ही कोई फोर्डमैन, न कोई कम्प्यूटर ऑपरेटर और न कोई बाबू। मालिक भी सप्ताह दो सप्ताह में कभी घूमने चला आया तो गनीमत। स्टॉफ के नाम पर मालिक ने एक मैनेजर रखा है। फिर भी रोज फैक्टरी में 4000 पॉजिटिव और 4000 निगेटिव बैटरी की प्लेटें तैयार होकर सप्लाई के लिए निकलती हैं जो कि सिर्फ नेभको कम्पनी अपने लिए नहीं तैयार करती। बल्कि पूरे देश भर में कई बड़ी पार्टियों को सप्लाई करती है। अनुमान लगाने में हो सकता है कि आप लोग कुछ ज़्यादा ही अनुमान लगा लें। इसलिए हम आपको बताना चाहते हैं कि ये फैक्टरी 150 व 200 गज के प्लॉट में बनी हुई है जिसमें टीन की छत है और इसमें मज़दूरों की संख्या भी कुछ खास नहीं है। क़रीब–क़रीब 35 मज़दूर इस फैक्टरी में काम करते हैं और इसमें मज़दूर की तनख्वाह भी बहुत ज़्यादा नहीं है। नये हेल्पर की (8 घण्टे) तनख्वाह 2600 रु. महीना। जो जितने साल पुराना कर्मचारी हो उसका उस हिसाब से। मगर फिर भी जो 10 साल पुराने भी हैं उनकी तनख्वाह 3500 रु. से ज़्यादा नहीं है। फिर भी ये फैक्टरी कैसे चलती है इसकी तारीफ तो मालिक की करनी ही होगी। ये ऐसी–ऐसी चालें चलते हैं कि एक मज़दूर की समझ के बाहर होती है। ख़ैर, इस फैक्टरी के मालिक ने प्रोडक्शन सिस्टम बना रखा है जो जितना माल तैयार करेगा उसकी उतनी दिहाड़ी बनेगी।

बैट्री प्लेट बनाने की प्रक्रिया – राँगा को गलाकर साँचे में डालते हैं, प्लेट तैयार हो जाती है। निगेटिव प्लेट में विशेष प्रकार के मसाले को आटे की तरह माँडकर लगाते हैं। फिर तेजाब में बिजली के करेण्ट से 12 घण्टे तक चार्ज करते हैं। पॉजिटिव प्लेट को साँचेनुमा कपड़ा में पैक कर रेडी आक्साइड और भी कई पाउडर भरते हैं फिर तेजाब में करेण्ट से 12 घण्टे तक चार्ज करते हैं जिसको ट्यूबलाइट प्लेट बोलते हैं। उसके बाद उन प्लेटों को सुखाते हैं। और फिर उनके कबाड़ के नक्खे तोड़कर फ्रेश मॉल को कार्टून में पैक कर देते हैं। अब यह बैट्री के प्लेट तैयार हो गई। इस फैक्ट्री में बस यही काम होता है। बाकी इसकी और भी कई शाखाएँ हैं, जो इसी इलाके में हैं। जहाँ से पूरी बैटरी तैयार होकर निकलती है। मज़दूर भी इस फैक्ट्री में अपने मालिक से बहुत खुश हैं। क्योंकि कभी भी किसी प्रकार की डाँट, गाली–गलौज नहीं सुननी पड़ती है। मैनेजर सभी मज़दूरों का दोस्त है सब उससे हँसी–मजाक करते रहते हैं। और इसीलिए सभी मज़दूर जी–जान लगाकर मशीन की तरह रोज रात के 12–1 बजे तक काम करते रहते हैं। काम सुबह 9 बजे ही शुरू हो जाता है। सारे मज़दूर मालिक से बहुत खुश रहते हैं। कहते हैं कि यहाँ से ज़्यादा कहीं नहीं कमा पाओगे। हर महीने 8–10 हजार रु. प्रति व्यक्ति कमा लेता है और जब सीजन खत्म हो जाये तो बस हाजिरी चढ़वा कर चले जाओ। तनख्वाह मिलती रहेगी। तो हमने कहा इसका मतलब तो यह हुआ कि 4 महीने की चाँदनी और फिर सूनी–सूनी रातें हैं।

आनन्द, बादली!

एफ 2 80, बादली औद्योगिक क्षेत्र जिसके मालिक दो भाई हैं। जिनका नाम अजय बंसल व विपिन बंसल है। इस कारखाने में बाल्टी, टंकी व अनेक प्रकार के बर्तन बनते हैं। इसमें 10 जुलाई 2012 को मालिकों ने तनख्वाह नहीं बढ़ायी जिसके विरोध में क़रीब 50 मज़दूरों ने लिखित रूप से तनख्वाह नहीं ली जिनका प्रमाण है। मालिकों ने जवरी 2012 में 600 रुपये बढ़ाये थे। जबकि मज़दूरों का कहना है कि हर साल मालिक 1100 रुपये बढ़ाता है। इस साल अप्रैल में सरकारी रेट बढ़ा तब से मज़दूर माँग कर रहे हैं कि तनख्वाह बढ़ाओ जो कभी मई तो कभी जून कहकर टाल रहा था और अब जुलाई में बढ़ायेंगे पर वह नहीं बढ़ायेगा। अब तो काम की भी कमी है। किसी दिन ओवरटाइम नहीं लगता। इस फैक्ट्री में क़रीब 100 लोग हैं जिसमें 17 लोग दिन में ठेके पर पीस रेट पर बफिंग का काम करते हैं। ठेकेदार के पास क़रीब 35 लोग हैं। मालिक ठेकेदार को माल देता है। और ठेकेदार अपने लेबर को पीस रेट पर काम देता है। इन वर्करों का मालिक से कोई वास्ता नहीं। वे ठेकेदार को जानते हैं। ठेकेदार के वर्कर अभी दिन में 17 व रात में 7 आते हैं। काम कम है। इसलिए कुछ गाँव घूमने चले गये हैं। लगभग 40 पुराने कारीगर हैं। बाकी सब हेल्पर हैं। कुछ कारीगरों का वेतन 7 हजार रुपये तक है। व फोर्डमैन, सुपरवाइजर व मालिक के चमचे टाइप के हैं। वे साथ नहीं हैं। कुछ हेल्परों का प्रमाण नहीं उनकहीं गिनती नहीं। 17 लोग पीस रेट पर हैं। वे भी साथ नहीं। कुछ मज़दूरों का कहना था कि हम बदायूँ जिले के आपसी रिश्तेदारी के ही क़रीब 30 लोग हैं जो पीछे नहीं हटेंगे। 40–50 कारीगर व हेल्पर ही इस संघर्ष में है उनमें भी आपस में कोई एकता नहीं है। सीआईटू के भरोसे हैं। पिछले साल सीटू से यूनियन की थी। अधिकतर मज़दूर मासिक 15 रुपये की पर्ची कटाते थे। बीच में मज़दूरों ने पर्ची कटाना बन्द कर दिया। अब जरूरत पड़ी तो फिर से अपना नेतृत्व सीटू के हाथ सौंप दिया। इन लोगों की माँग है कि महँगाई के हिसाब से 1000 रुपये बढ़ाए जायें। अगर 500 रुपये भी बढ़ेंगे तो समझौता कर लेंगे। लेकिन मालिक बात सुनने के मूड में नहीं है। सीटू का कहना है कि काम करते रहिए। लेबर ऑफिसर आयेगा तब समझौता होगा। आज 12 तारीख को मालिक 200 रुपये बढ़ाने का आश्वासन दे रहा है। अभी मज़दूरों ने वेतन नहीं ली। बाकी मज़दूर कह रहे हैं। हम लड़ने के लिए तैयार हैं। मगर हमें ज़्यादा जानकारी नहीं। इसलिए किसी यूनियन का साथ पकड़ना पड़ेगा। मज़दूरों का जो नेतृत्व कर रहे हैं। मज़दूरों ने हमें उनसे मिलाया। नेतृत्व के किसी भी आदमी ने ये स्वीकार नहीं किया कि हम लाग संघर्ष कर रहे हैं। उन्हीं में से एक मज़दूर जो सीटू की सभाओं में झण्डा लिये पर्चा बाँटते एक–दो बार दिखा था। उसने कहा, कुछ नहीं ये तो हमारी अपनी बात है। हमारी मालिक से कोई लड़ाई नहीं है। और मज़दूरों को कहा सब ठीक है। चलो, चलो। और आगे जाकर 100 मीटर की दूरी पर मज़दूरों से मीटिंग की।

13 जुलाई 2012 को हम लोग प्रदर्शनी लगाये थे तो शाम को पहचानपत्र कार्यालय वाली सड़क पर पहले सीटू के त्यागी निकले फिर 5–5, 10–10 के ग्रुप में मज़दूर उसी सड़क पर जा रहे थे।

रामाधार, बादली।

मज़दूर भाइयों के नाम चिट्ठी

मैं कन्नौज उ.प्र. की रहने

(पेज 15 पर जारी)

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों–कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच–समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी– चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी–अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए–1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ–226006 फ़ोन : 0522–2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी–100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली–94, फ़ोन: 011–64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/– वार्षिक – रु. 70/– (डाक ख़र्च सहित)

'ब्राण्डेड' कपड़ों के उत्पादन में लगे गुड़गाँव के लाखों मज़दूरों की स्थिति की एक झलक

गुड़गाँव के उद्योग विहार से लेकर मानेसर तक लगभग दस हजार कम्पनियों में लाखों मजदूर काम करते हैं। इस पूरे इलाके में देश के कई कोनों से आकर काम ढूढ़ने वाले मजदूरों की संख्या लगातार बढ़ रही है। यू.पी., बिहार, हरियाणा, बंगाल, मधय प्रदेश, राजस्थान और उड़ीसा जैसे कई राज्यों से काम की तलाश में आने वाले ज्यादातर मजदूर इस क्षेत्र में नये होते हैं और उन्हें अपने अधिकारों और श्रम कानूनों की कोई जानकारी नहीं होती और न ही उनके सामने आजीविका कमाने का कोई और विकल्प होता है, इसलिये वे किसी भी शर्त पर कारखानों में काम करने के लिए तैयार रहते हैं। गुड़गाँव के इस क्षेत्र में मौजूद सभी कम्पनियाँ इसका पूरा फायदा उठा रही हैं और ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए अपनी मनमर्जी के मुताबिक मजदूरों से काम करवा रही हैं और देश की जीडीपी में अपनी मोटी भागीदारी सुनिश्चित कर रही हैं। आटोमोबाइल और मेडिकल जैसे कई उद्योगों के साथ कपड़ा उद्योग से जुड़ी अनेक कम्पनियाँ इस औद्योगिक क्षेत्र में मौजूद हैं। इन कपड़ा कम्पनियों में लाखों महिलाएँ और पुरुष मजदूर पूरी दुनिया की बड़ी-बड़ी कम्पनियों के लिए, पांच सितारा होटलों तथा शॉपिंग माँलों की चमक दमक के लिए और मधय-वर्ग की ब्रांडेड जरूरतों को पूरा करने के लिए कई तरह के कपड़ों का उत्पादन करने में लगे हैं। अकेले गुड़गांव के उद्योग विहार औद्योगिक क्षेत्र में ही लगभग 2,500 कपड़ा कम्पनियों में मजदूर काम करते हैं। इन कम्पनियों में तैयार ज्यादातर डिजाइनर कपड़े यूरोप, अमेरिका और सिंगापुर जैसे देशों की कम्पनियों के लिये बनाये जाते हैं और वहाँ निर्यात किये जाते हैं। कई कम्पनियाँ सादा कपड़ा भी बनाती हैं, जिसे अन्य कम्पनियों को निर्यात कर दिया जाता है और इस कपड़े का इस्तेमाल कच्चे माल के रूप में जैकेट तथा दूसरे कपड़े बनाने में किया जाता है। हर साल यह कम्पनियाँ देश-विदेश में कपड़ो का कई हजार करोड़ का व्यापार करती हैं और भारत सरकार देश के विकास में इनकी भागीदारी के लिये इन्हें सम्मानित भी करती रहती है। हर दिन कई घण्टों तक इन्हीं "ब्राण्डेड" कपड़ों के प्रचार में लगा रहने वाला भारत का "स्वतंत्र" मीडिया भी इन कारखानों में लगे मजदूरों की ज़िन्दगी और उनकी जीवन की स्थिति के बारे में कभी कोई खबर नहीं दिखाता और देश-विदेश में इन ब्राण्डेड कपड़ों के लिये एक बड़े बाजार का निर्माण करने वाली मध्य-वर्ग की आबादी इन कपड़ों का निर्माण करने वाले लाखों मजदूरों की जिन्दगी की सच्चाई से बेखबर देश-विदेश के कुछ मुट्ठी भर लोगों के विलासी जीवन की चकाचौंध को देखकर उससे सम्मोहित होती रहती है।

इन सभी कपड़ा कम्पनियों में से ज्यादातर में 5 से 10 प्रतिशत मजदूर ही पर्मानेन्ट होते हैं और 90 से 95 फीसदी मजदूरों को ठेकेदारों के माध्यम से काम पर रखा जाता है, जबकि जो काम यह ठेका मजदूर करते हैं वह स्थाई रूप से लगातार पूरे साल चलता है। इन सभी ठेका मजदूरों के लिए श्रम कानूनों का कोई मतलब नहीं होता। कोई दुर्घटना हो जाने पर कम्पनियाँ ठेके पर काम करने वाले इन मजदूरों को कोई हर्जाना नहीं देतीं, और न ही मजदूर के पास कोई आई-कार्ड होता है जिसके तथ्य पर वे ठेकेदार से पैसा ले सके। इन कम्पनियों में सुरक्षा के कोई इंतजाम नहीं होते और आने जाने के लिये सिर्फ एक गेट होता है। पिछले दिनों जब पाकिस्तान में एक कपड़ा फैक्टरी में आग लगने से 280 के आसपास मजदूरों की मौत हो गई उसके बाद हरियाणा प्रशासन ने सुरक्षा के इंतजाम ठीक करने के आदेश दिये। लेकिन यहाँ मौजूद किसी भी कम्पनी में न तो सुरक्षा के मानकों का पालन होता है और न ही कोई श्रम अधिकारी इनकी जाँच करते हैं।

काम के दौरान यदि कोई मजदूर अस्वस्थ हो जाता है तो उनके लिये किसी डाक्टर या प्रारम्भिक चिकित्सा का भी कोई इन्तजाम इन कम्पनियों में नहीं होता। ज्यादातर कपड़ा कम्पनियों में 50 से 1500 तक मजदूर काम करते हैं, लेकिन कुछ बड़ी कम्पनियों में लगभग 10,000 मजदूर तक काम करते हैं। ज्यादातर कम्पनियों में 12-12 घंटे की दो शिफ्टों में या 8-8 घंटों की तीन शिफ्टों में काम होता है। 8 घंटे की शिफ्ट में काम करने वाले मजदूरों को अधिक काम होने पर सिंगल रेट से ओवर टाइम की मजदूरी देकर दो शिफ्टों में 16 घण्टे काम करवाया जाता है और मजदूर इससे मना नहीं कर सकते। ज्यादातर सभी कम्पनियों में नये मजदूरों को इसी शर्त पर काम पर रखा जाता है कि वे दो शिफ्टों में 16 घण्टे काम करने के लिये तैयार हों। कई मजदूर 16 घण्टे खड़े होकर लगातार काम नहीं कर पाते और बीच में ही छोड़ देते हैं जिनका बकाया पैसा उन्हें कभी नहीं दिया जाता और वे ठेकेदारों के चक्कर लगाने के बाद अन्त में अपनी बकाया मजदूरी और पी.एफ. ई.एस.आई. के पैसे छोड़ देते हैं। 8 घण्टे की एक शिफ्ट के दौरान दिन में एक बार 30 मिनट का लंच होता है, और इसके अलावा मजदूर लगातार खड़े होकर काम करते हैं। जब भी मजदूरों से दो शिफ्टों में ओवरटाइम करवाया जाता है तो उन्हें बीच में 30 मिनट का गैप दिया जाता है जिसके बाद दूसरी शिफ्ट में उन्हें लगातार काम करना पड़ता है। ज्यादातर कम्पनियों में मजदूरों को पूरे महीने में एक भी छुट्टी नहीं मिलती और निर्धारित समय से थोड़ा भी लेट होने पर आधे दिन का वेतन काट दिया जाता है। समय और नियमों का हवाला देकर वेतन काटने का यह काम वही कम्पनी मैनेजमेण्ट या ठेकेदार करते हैं जो अनेक मजदूरों की बकाया मजदूरी, पी.एफ. और ई.एस.आई. पहले ही गैर-कानूनी ढंग से लूट चुके होते हैं और मजदूरों की मेहनत की इसी लूट पर पल रहे हैं। इस तरह मजदूर दोहरे शोषण के शिकार हैं; एक ओर श्रम कानूनों के लागू न होने से काम और जीवन की बदतर स्थिति और दूसरी ओर कम्पनी मैनेजमेण्ट और ठेकेदारों द्वारा गैर-कानूनी ढंग से की जाने वाली लूट।

हरियाणा सरकार द्वारा 2012 में निर्धारित किए गए मानक के अनुसार एक अकुशल मजदूर को हर हफ्ते में 6 दिन 8 घण्टे काम के बदले 4,847 रुपये महीना (या 186 रुपया प्रति दिन) मिलना चाहिये और श्रम कानून के अनुसार ओवर टाइम दुगनी दर से मिलना चाहिये। यानि यदि एक मजदूर पूरे महीने 6 दिन हफ्ते के हिसाब से 12 घण्टे प्रति दिन काम करता है तो उसे दोगुना, यानि 9,694 रुपये, वेतन मिलना चाहिये। और यदि एक मजदूर हफ्ते में सात दिन काम करता है तो 12 घण्टे प्रति दिन काम के बदले में उसकी पूरे महीने की मजदूरी 11,904 होनी चाहिए। यह कागजों पर बने कानूनों की बात है, लेकिन गुड़गांव औद्योगिक क्षेत्र की वास्तविक स्थिति काफी अलग है। यहाँ कुछ कम्पनियों में मजदूर ठेके पर सीधे काम पर रखे जाते हैं, जिन्हें 8 घण्टे की शिफ्ट में 30 दिन काम के बदले 4,000 से 4800 के आसपास मजदूरी दी जाती है। कई कम्पनियों में मजदूरों को कई ठेकेदारों के माध्यम से काम पर रखा जाता है, क्योंकि कम्पनी सभी मजदूरों को सीधे काम पर नहीं रखना चाहती। इससे मजदूरों को एकजुट होने से रोकने का फायदा कम्पनियों को मिलता है। ठेकेदारों के माध्यम से रखे जाने वाले मजदूरों को 8 घण्टे की शिफ्ट में काम के बदले 3,000 से 4,000 रुपयों के आसपास मजदूरी दी जाती है, जिसमें से पी.एफ. और ई.एस.आई. कटने (जो भविष्य में मजदूरों को कभी नहीं मिलता) के बाद मजदूरों को लगभग 3,000 से 3,800 रुपये महीना मजदूरी मिलती है। कई कम्पनियाँ ठेका मजदूरों से 12 घण्टे की शिफ्ट में महीने में 30 दिन काम करवाती हैं और उन्हें निर्धारित मजदूरी से आधी से भी कम, यानि 5,500-5900 के आसपास मजदूरी दी जाती है, जो श्रम कानून के अनुसार 11,904 (186 रुपया प्रति दिन और ओवरटाइम डबल रेट के हिसाब से) होनी चाहिये। यदि श्रम कानून द्वारा निर्धारित मजदूरी को भी मान लिया जाये तो आठ घण्टे काम के बदले में मिलने वाली 4,800 रुपये मजदूरी जिसमें से पीएफ और ईएसआई काट लिया जाता है, यह गुड़गाँव जैसे शहर में इंसान की तरह एक सामान्य जीवन जीने के लिये किसी भी स्थिति में नाकाफी है। ऐसे में ज्यादातर मजदूर ऐसी कम्पनियों की तलाश करते हैं जहाँ ओवरटाइम करवाया जाता हो या 12 घण्टे की शिफ्ट में काम होता हो, क्योंकि 8 घंटों काम के बदले में मिलने वाली मजदूरी इतनी कम होती है कि चिकित्सा-शिक्षा जैसी मूलभूत सुविधाओं के बाजारीकरण के इस दौर में कोई भी मजदूर उससे अपने परिवार के लिए भोजन, कपड़ा, इलाज, आवास और शिक्षा जैसी मूलभूत जरूरते भी पूरी नहीं कर सकता। ऐसे में इन सभी मजदूरों के पास 12 से 16 घंटे काम करके कुछ सौ रुपये ज्यादा मजदूरी कमाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचता। यह लाखों मजदूर वर्तमान व्यवस्था में थोड़ी सी मजदूरी के बदले ठेकेदारों, दलालों और कम्पनियों की गुलामी करने पर मजबूर हैं।

मजदूरों से दवाब में काम करवाने और उन्हें काम न छोड़ने देने के लिये किसी भी कपड़ा कम्पनी में मजदूरों का वेतन समय पर नहीं दिया जाता। ज्यादातर मजदूर छह महीने या एक साल में ठेकेदारों के दबाव और सुपरवाइजरों द्वारा की जाने वाली गाली-गलौज और मारपीट से परेशार होकर कम्पनियाँ बदल देते हैं। मजदूरों को ओवरटाइम ठेकेदारों की मर्जी से करना पड़ता है और ओवर टाइम की जानकारी उसी दिन छुट्टी होने से सिर्फ थोड़ा पहले दी जाती है। ओवरटाइम से मना करने पर ठेकेदारों द्वारा गाली-गलौज व मारपीट करना और काम से निकाल देना आम बात है। कभी-कभी ज्यादा काम होने पर कम्पनियाँ अन्दर से ताला लगाकर मजदूरों से तीन से चार शिफ्टों में लगातार काम करवाती हैं। जिन कम्पनियों में असेम्बली लाईन में कपड़ों की सिलाई और कटाई का काम होता है उनमें सुपरवाइजर लगतार मजदूरों पर नजर रखते हैं, और यदि कोई मजदूर लाइन में काम करने में देर करता है तो उसे काम से निकाल देने की धमकी देकर तेज काम करवाया जाता है। कुछ कम्पनियों में एक लाइन में कटाई, सिलाई, जैसे कामों के लिये 40-50 मजदूर होते हैं जिसके लिये ज्यादा कुशल मजदूरों की आवश्यकता नहीं पड़ती और ज्यादातर ठेके पर रखे जाने वाले मजदूरों से ही लाइन में सिलाई कटाई जैसे काम करवाये जाते हैं। एक मजदूर ने बताया कि औसत रूप में हर मजदूर एक घंटे में 35 कपड़ों पर काम करता है, यानि दो मिनट से भी कम समय में मजदूर एक कपड़े को प्रोसेस करते हैं और लगातार 12 से 16 घण्टे मशीन की तरह लगे रहते हैं।

इस क्षेत्र के किसी भी कपड़ा कारखाने में ठेका मजदूरों की यूनियन नहीं है और बड़ी-बड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें कभी इन मजदूरों की समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं देतीं जिससे कारण यहाँ कम्पनियों के मैनेजमेण्ट और ठेकेदार अपनी पूरी तानाशाही मजदूरों के ऊपर थोपते हैं। देश के "विकास" की चमक-दमक में मजदूरों के खुले शोषण और भारतीय "जनतन्त्र" में मेहनत-मजदूरी कर जीने वाली गुड़गाँव की इस मजदूर आबादी के साथ होने वाली अंधेरगर्दी यहीं समाप्त नहीं होती, बल्कि इन मजदूरों की किसी भी समस्या की कोई सुनवाई न ही श्रम विभाग या पुलिस में होती है और न ही कोई नेता या मन्त्री कभी इनकी खबर लेने आता है। आई-फोन और ब्राण्डेड कपड़ों से लेकर 3-डी टीवी जैसे विलासिता के सामानों के प्रचार में घण्टों का समय देने वाला मेनस्ट्रीम मीडिया भी 6 से 10 प्रतिशत की दर से "प्रगति" कर रहे भारत में रहने वाले इन मजदूरों के जीवन की सच्चाई को नहीं दिखाता। लेकिन जब दमन उत्पीड़न और शोषण के शिकार यह मजदूर अपनी कानूनी हक जैसे ओवर-टाइम डबल रेट से या यूनियन बनाने की संवैधानिक माँग के लिये सड़कों पर आते हैं और कोई आन्दोलन करते हैं तो पुलिस-फोर्स से लेकर श्रम विभाग और मन्त्रियों से लेकर मीडिया तक सभी कम्पनियों के दलालों के रूप में मजदूरों के खिलाफ प्रचार और दमन की कार्यवाहियों को जायज ठहराने के लिये सामने आ जाते हैं। ओरियण्ट क्राफ्ट में इसी साल 19 मार्च में हुई घटना इसक प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जहाँ ठेकेदार द्वारा एक मजदूर के चाकू मारने के बाद मजदूरों ने विरोध प्रदर्शन किया था जिसको दबाने के लिये कम्पनी द्वारा पुलिस और बाउन्सरों (गुण्डों) का सहारा लेकर मजदूरों का खुला दमन किया गया था और कई मजदूर गिरफ्तार कर लिये गये, जबकि ठेकेदार को दूसरे दिन ही छोड़ दिया गया था। इस घटना के बाद पुलिस और कम्पनी मैनेजमेण्ट द्वारा मजदूरों में फैलाये गये खौफ का अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि सभी मजदूर घटना के समय मौजूद न होने की बात कह रहे थे और कोई भी जानकारी देने से डर रहे थे।

पूरे भारत में किसी क्रान्तिकारी मजदूर यूनियन तथा किसी मजदूर संगठन के न होने के कारण मजदूरों अपनी कानूनी माँगों को कम्पनियों और पूँजीवादी सत्ता से सामने रखकर दवाब बनाने में असमर्थ हैं। मजदूरों की इस मजबूरी का पूरा फायदा पूँजीवादी प्रशानिक-राजनीतिक तंत्र उठा रहा है। इसके साथ ही इस क्षेत्र में मौजूद बड़ी-बड़ी यूनियनें जो मजदूरों को गुमराह करने के लिये कम्पनी और मजदूरों को "एक परिवार" और "एक-दूसरे के सहयोगी" के रूप में प्रचार करती हैं, और अपनी दलालों की भूमिका का पूरा निर्वाह कर रही हैं। 1990 के आर्थिक सुधाारों और निजीकरण-उदारीकरण की नीतियाँ लागू करने के बाद भारत की पूँजीवादी राज्य सत्ता ने देशी-विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने और 8-9 प्रतिशत की "विकास" दर हासिल करने के लिये मजदूरों के सभी अधिकारों को एक-एक कर लगातार सीमित किया है जिसका पूरा फायदा यह कम्पनियाँ उठा रही हैं

(पेज 9 पर जारी)

जैक लण्डन के उपन्यास आयरन हील का एक अंश

एक सपने का गणित

अर्नेस्ट के उद्घाटन से लोग मानो भौंचक रह गए। इस बीच उसने फिर शुरू किया:

''आप में से दर्जनों ने कहा कि समाजवाद असंभव है। आपने असंभाविता पर जोर दिया है। मैं अनिवार्यता को चिन्हित कर रहा हूं। न केवल यह अनिवार्य है कि आप छोटे पूंजीपति विलुप्त हो जाएंगे–बड़े पूंजीपति और ट्रस्ट भी नहीं बचेंगे। याद रखो विकास की धारा पीछे नहीं लौटती। वह आगे ही बढ़ती जाती है, प्रतियोगिता से संयोजन की ओर, छोटे संयोजनों से बड़े संयोजनों की ओर, फिर विराट संयोजन की ओर और फिर समाजवाद की ओर जो सबसे विराट संयोजन है।

'आप कह रहे हैं कि मैं सपना देख रहा हूं। ठीक है मैं सपने का गणित प्रस्तुत कर रहा हूं और यहीं मैं पहले से आपको चुनौती दे रहा हूं कि आप मेरे गाणित को गलत साबित करें। मैं पूंजीवादी व्यवस्था के ध्वंस की अनिवार्यता प्रमाणित करूंगा और मैं इसे गणितीय ढंग से प्रमाणित करूंगा। मैं शुरू कर रहा हूं। थोड़ा धैर्य रखें, अगर शुरू में यह अप्रासंगिक लगे।

'पहले हम किसी एक औद्योगिक प्रक्रिया की खोजबीन करें और आप मेरी किसी बात से असहमत हों, फौरन हस्तक्षेप कर दें। एक जूते की फैक्ट्री को लें। वहां लेदर के जूते बनाये जाते है। मान लीजिए दो सौ डॉलर के। हुआ क्या? चमड़े के दाम सौ डालर में सौ डालर और जुड़ गया। कैसे? आइए देखें।

पूंजी और श्रम ने जो सौ डालर जोड़े। पूंजी ने फैक्टरी, मशीनें जुटाई, सारे खर्चे किए। श्रम ने श्रम जुटाया। दोनों के संयुक्त प्रयास से सौ डालर मूल्य जुड़ा। आप अब तक सहमत हैं?'

सब ने स्वीकार में गर्दन हिलाई।

'पूंजी और श्रम इस सौ डालर का विभाजन करते हैं। इस विभाजन के आंकड़े थोड़े महीन होंगे। तो आइए मोटा-मोटा हिसाब करें। पूंजी और श्रम पचास-पचास डालर बांट लेते हैं। हम इस विभाजन में हुए विवाद में नहीं पड़ेंगे। यह भी याद रखें कि यही प्रक्रिया सभी उद्योगों में होती है। ठीक है न?'

फिर सब ने स्वीकृति में गर्दन हिलायी।

'अब मान लीजिए मजदूर जूते खरीदना चाहें तो पचास डालर के ही जूते खरीद सकते हैं। स्पष्ट है न?'

'अब हम किसी एक प्रक्रिया की जगह अमरीका की सभी प्रक्रियाओं की कुल प्रक्रिया को लें जिसमें चमड़ा, कच्चा माल, परिवहन सब कुछ हो। मान लें अमरीका में साल भर में चार अरब के धन का उत्पादन होता है। तो उस दौरान मजदूरों ने 2 अरब की मजदूरी पाई। चार अरब का उत्पादन जिसमें से मजदूरों को मिला-दो अरब-इसमें तो कुछ भी कभी नहीं मिल पाता। पर चलिए मान लेते हैं कि आधा यानी दो अरब मिला मजदूरों को। तर्क तो यही कहेगा कि मजदूर दो अरब का उपयोग कर सकते हैं। पर दो अरब का हिसाब बाकी है जो मजदूर नहीं पा सकता और इसलिए नहीं खर्च कर सकता।'

'मजदूर अपने दो अरब भी खर्च नहीं करता- क्योंकि तब वह बचत खाते में जमा क्या करेगा? कोबाल्ट बोला।'

'मजदूर का बचत खाता एक प्रकार का रिजर्व फंड होता है जो जितनी जल्दी बनता है उतनी ही जल्दी खत्म हो जाता है। यह बचत वृद्धावस्था, बीमारी, दुर्घटना और अन्त्येष्टि के लिए की जाती है। बचत रोटी के उस टुकड़े की तरह होती है जिसे अगले दिन खाने के लिए बचा कर रखा जाता है। मजदूर वह सारा ही खर्च कर देता है जो मजदूरी में पाता है।

'दो अरब पूंजीपति के पास चले जाते हैं। खर्चों के बाद सारे का क्या वह, उपभोग कर लेता है? क्या अपने सारे दो अरब का वह उपभोग करता है।

अर्नेस्ट ने रुककर कई लोगों से दो टूक पूछा। सबने सिर हिला दिया।

'मैं नहीं जानता।' एक ने साफ-साफ कह दिया।

'आप निश्चित ही जानते हैं। क्षण भर के लिए जरा सोचिए। अगर पूंजीपति सबका उपभोग कर ले तो पूंजी बढ़ेगी कैसे? अगर आप देश के आर्थिक इतिहास पर नजर डालें तो देखेंगे कि पूंजी लगातार बढ़ती गई है। इसलिए पूंजीपति सारे का उपभोग नहीं करता। आपको याद है जब इंग्लैंड के पास हमारी रेल के अधिकांश बॉन्ड थे। फिर हम उन्हें खरीदते गए। इसका क्या मतलब हुआ? उन्हें उस पूंजी से खरीदा गया जिसका उपभोग नहीं हुआ था। इस बात का क्या मतलब है कि युनाइटेड स्टेट्स के पास मैक्सिको, इटली और रूस के करोड़ों बॉन्ड हैं? मतलब है कि वे लाखों-करोड़ों वह पूंजी है जिसका पूंजीपतियें ने उपभोग नहीं किया। इसके अलावा पूंजीवाद के प्रारम्भ से ही पूंजीपति ने कभी अपना सारा हिस्सा खर्च नहीं किया है।'

अब हम मुख्य मुद्दे पर आएं। अमरीका में एक साल चार अरब धन का उत्पादन होता है। मजदूर उसमें से दो अरब पाता है और खर्च कर देता है। पूंजीपति शेष दो अरब खर्च नहीं करता। भारी हिस्सा बचा रहा जाता है। इस बचे अंश का क्या होता है? इससे क्या हो सकता है? मजदूर इसमें से कुछ नहीं खर्च कर सकता क्योंकि उसने तो अपनी सारी मजदूरी खर्च कर दी है। पूंजीपति जितना कर सकता है, करता है, फिर भी बचा रह जाता है। तो इसका क्या हो? क्या होता है?

'इसे विदेशों में बेच दिया जाता है।' कोबाल्ट ने एक जवाब ढूंढा।

'एकदम ठीक! इसी शेष के लिए हमें विदेशी बाजार की जरूरत होती है। उसे विदेशों में बेचा जाता है। वही किया जा सकता है। उसे खर्चने का और उपाय नहीं है। और यही उपर्युक्त अतिरिक्त धन जो विदेशों में बेचा जाता है हमारे लिए सकारात्मक व्यापार संतुलन कहलाता है। क्या हम यहां तक सहमत है?'

' इस व्यवसाय के क,ख,ग पर बात करना वक्त जाया करना है। हम सब इसे समझते हैं।' काल्विन ने शुष्कता से कहा।

'इस सुप्रस्तुत क,ख,ग से ही मैं आपको चकित करूंगा। यहीं। अमरीका एक पूंजीवादी देश है जिसने अपने संसाधनों का विकास किया है। अपनी पूंजीवादी औद्योगिक व्यवस्था से उसके पास काफी धन बच जाता है जिसका वह उपभोग नहीं कर पाता। उसे विदेशों में खर्च करना जरूरी है। यही बात दूसरे पूंजीवादी देशों के बारे में भी सच है अगर उनके संसाधन विकसित है। यह न भूलें कि वे आपस में खूब व्यापार करते हैं। फिर भी अतिरिक्त काफी बच जाता है। इन देशों में मजदूर सारी मजदूरी खर्च कर देता है और इस बचे हुए अतिरिक्त को खरीदने में असमर्थ है। इन देशों के पूंजीपति जितना भी उपयोग कर सकते हैं करते हैं फिर भी बहुत कुछ बच जाता है। इस अतिरिक्त धन को वे एक दूसरे को नहीं दे सकते। फिर उसका वे क्या करें?'

'उन्हें अविकसित संसाधनों वाले देशों को बेच दें।' कोबाल्ट बोला।

'एकदम यही ठीक है। मेरा तर्क इतना स्पष्ट और सीधा है कि आप स्वयं मेरा काम आसान कर रहे हैं। अब अगला कदम! मान लिया युनाइटेड स्टेट्स अपने अतिरिक्त धन को एक अविकसित देश जैसे ब्राजील में लगाता है। याद रखें यह अतिरिक्त उस व्यापार से अलग है जिसका इस्तेमाल हो चुका है। तो उसके बदले में ब्राजील से क्या मिलता है?'

'सोना' कोबाल्ट बोला।

'लेकिन दुनिया में सोना तो सीमित है!' अर्नेस्ट ने एतराज किया।

'सोना प्रतिभूति बॉन्ड आदि के रूप में।' कोवाल्ट ने अपने को सुधारा।

आप पहुंच गए। ब्राजील से अमरीका अपने अतिरिक्त धन के बदले में लेता है सिक्योरिटी और बॉन्ड। क्या मतलब हुआ इसका? इसका मतलब है अमरीका ब्राजील में रेल, फैक्ट्रियों, खदानों और जमीनों का मालिक बन सकता है। और तब इसका क्या मतलब हुआ?'

कोवाल्ट सोचने लगा पर नहीं सोच पाया और नकारात्मक सिर हिला दिया।

'मैं बताता हूं। इसका मतलब हुआ ब्राजील के संसाधन विकसित किए जा रहे हैं। जब ब्राजील पूंजीवादी व्यवस्था में अपने संसाधन विकसित कर लेगा तो उसके पास भी अतिरिक्त धन बचने लगेगा। क्या वह इसे अमरीका में लगा सकता है? नहीं क्योंकि उसके पास तो अपना ही अतिरिक्त धन है। तो क्या अमरीका अपना अतिरिक्त धन पहले की तरह ब्राजील में लगा सकता है? नहीं; क्योंकि अब तो स्वयं ब्राजील के पास अतिरिक्त धन है।

'तब क्या होता है? इन दोनों को तीसरा अविकसित देश ढूंढना पड़ेगा जहां वे अपना सरप्लस उलीच सकें। इस क्रम से उनकें पास भी अतिरिक्त धन बचने लगेगा। महानुभाव गौर करें धरती इतनी बड़ी तो है नहीं। देशों की संख्या सीमित है। तब क्या होगा जब छोटे से छोटे देश में भी कुछ अतिरिक्त बचने लगेगा।'

उसने रुककर श्रोताओं पर एक नजर डाली। उनके चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं। उसे मजा आया। थोड़ा डर भी झांक रहा था। जितने बिम्ब खींचे थे अर्नेस्ट ने उनमें से कई उन्हें डरा रहे थे।

'मिस्टर काल्विन हमने ए.बी.सी. से शुरू किया था। मैंने अब सारे अक्षर सामने रख दिए हैं। कितना आसान है। यही तो है इसका सौन्दर्य। आपको उत्तर सूझ रहा होगा। क्या होगा जब हर देश के पास अतिरिक्त बचा रह जाएगा और तब आपकी पूंजीवादी व्यवस्था का क्या होगा?'

काल्विन का दिमाग परेशान हो रहा था। वह अर्नेस्ट की बातों में गलती ढूंढ़ने में लगा हुआ था। अर्नेस्ट ने ही फिर शुरू किया:

'मैं अपनी बात संक्षेप में दोहरा दूं। हमने एक विशेष औद्योगिक प्रक्रिया से बात शुरू की थी। एक जूता फैक्टरी से। हमने पाया कि जो हाल वहां है वही सारे औद्योगिक जगत में है। हमने पाया कि मजदूर को उत्पादन का एक हिस्सा मिलता है जिसे वह पूरी तरह खर्च कर देता है और पूंजीपति पूरा खर्च नहीं कर पाता। बचे हुए अतिरिक्त धन के लिए विदेशी बाजार अनिवार्य है। इस निवेश से वह देश भी अतिरिक्त पैदा करने में समर्थ हो जाता है। जब एक दिन सभी इसी स्थिति में पहुँच जाएंगे तो अंततः इस अतिरिक्त का क्या होगा? मैं एक बार फिर पूछता हूं क्या होगा?

किसी ने जवाब नहीं दिया।

'काल्विन महोदय!'

'मुझे समझ नहीं आ रहा।' उसने स्वीकारा।

'मैंने तो यह सपने में भी नहीं सोचा था पर यह तो एकदम स्पष्ट लग रहा है।'

ऐसमुनसेन ने कहा।

मैं कार्लमार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की इतनी सरल प्रस्तुति सुन रही थी और मैं स्तब्ध और चकित बैठी थी।

अर्नेस्ट ने कहा: 'मैं आपको एक रास्ता सुझाता हूं-इस अतिरिक्त को समुद्र में फेंक दीजिए। हर साल लाखों-करोड़ों के जूते-कपड़े-गेहूं और अन्य उत्पाद समुद्र में फेंक दें। हल नहीं हो जाएगी समस्या?'

'हो तो जाएगी पर ऐसी बात करना बकवास है।' काल्विन ने कहा।

अर्नेस्ट उस पर टूट पड़ा।

'जिसकी आप वकालत कर रहे थे, आप मशीन भंजक लोग पूर्वजों की लौटने की बात कर रहे थे न? क्या यह बात उससे ज्यादा बकवास है? आखिर अतिरिक्त धन की समस्या के समाधान का क्या उपाय है आपके पास? एक हल है कि अतिरिक्त का उत्पादन ही न हो। पर कैसे? आदिम उत्पादन पद्धति ताकि अतिरिक्त का उत्पादन ही असंभव हो जाय?

काल्विन ने मुखरस निगला। बात स्पष्ट हो गई थी। उसने गला साफ किया और कहा:

'तुम सही हो। मैं मान गया तुम्हारी बात। यह बकवास है। लेकिन हमें कुछ करना चाहिए। हम मध्यवर्ग वालों के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न है। हम अपने ध्वंस को नकारते हैं। हम बकवास को ही चुन रहे हैं। और अपने पूर्वजों के मुद्दे और खर्चीले तरीके की ओर लौटना चाहते हैं। हम उद्योग को ट्रस्टों के पहले वाली स्थिति में ले जाएंगे। हम तोड़ डालेंगे मशीनों को। क्या करोगे तुम?'

'लेकिन आप मशीने तोड़ ही नहीं सकते, विकास की धारा को पीछे मोड़ ही नहीं सकते। आपके खिलाफ दो शक्तियां हैं हरेक तुम्हारे मध्यवर्ग से अधिक शक्तिशाली। बड़े पूंजीपति या ट्रस्ट तुम्हें पीछे लौटने ही नहीं देंगे। वे नहीं चाहते कि मशीन टूटें। ट्रस्टों से भी बड़ा और अधिक शक्तिशाली है मजदूर वर्ग। वह भी मशीन नहीं तोड़ने देगा। मशीनों के साथ इस दुनिया की मिल्कियत तो पूंजी और श्रम के बीच है। युद्ध का यही स्वरूप है। दोनो में से कोई भी मशीनों का ध्वंस नहीं चाहता। दोनों ही मशीनों का मालिक बनना चाहते हैं। इस युद्ध में मध्यवर्ग का कोई स्थान नहीं हैं। दो विराटों के बीच मध्यवर्ग एक बौना है। ध्वस्त हो मध्यवर्ग-आप देख नहीं रहे आप दो पाटों के बीच पीस रहे हैं। शुरू हो चुकी है पिसाई।

'हमने आपको पूंजीपति वर्ग का अनिवार्य विनाश का गणित समझा दिया है। जब हर देश के पास ऐसा अतिरिक्त इक्ट्ठा हो जाएगा जिसका उपभोग असंभव होगा। तब अपने ही द्वारा शुरू की गई मुनाफे की व्यवस्था चरमराकर बैठ जाएगी। उस समय मशीनों का भंजन नहीं होगा। उस वक्त स्वामित्व का संघर्ष होगा। अगर श्रम जीतता है तो तुम्हारे लिए आसानी होगी। अमरीका ही नहीं सारी दुनिया एक नए और शानदार युग में प्रवेश करेगी। मशीनें आदि आदमी को पीस देने की बजाय उसके जीवन को पहले से अधिक खुशहाल, बेहतर और भद्र बनाएंगी। ध्वस्त मध्यवर्ग और मेहनतकश-तब केवल मेहनतकश होंगे, मशीनों के उत्पादन के न्यायपूर्ण विभाजन में भागीदारी करेंगे। हम सब मिलकर और मशीने बनाएंगे। कोई अतिरिक्त उत्पादन नहीं होगा जिसका उपभोग न हो, क्योंकि मुनाफा पैदा ही नहीं होगा।'

(पेज 12 पर जारी)

मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आह्वान

गुड़गाँव–मानेसर–धारूहेड़ा–बावल औद्योगिक पट्टी के समस्त मज़दूर इलाक़ाई पैमाने पर एकजुट हों!

(पेज 1 से आगे)

उस विज्ञापन में यह कहीं नहीं बताया गया कि उसने अपने 546 मज़दूरों को काम से निकाल दिया है! यह भी नहीं बताया गया कि जब सरकार ने महज़ 215 मज़दूरों के ख़िलाफ़ आरोप-पत्र दायर किया है, तो कम्पनी ने 546 को बर्ख़ास्त क्यों किया? जब भारत का श्रम मन्त्री पहले ही बोल चुका था कि मारुति कम्पनी द्वारा बनायी गयी आचार-संहिता असंवैधानिक है, तो उसके आधार पर कम्पनी ने सैंकड़ों मज़दूरों को बर्ख़ास्त क्यों किया? **इन सवालों का कम्पनी और प्रबन्धन के पास कोई जवाब नहीं है! उसे जवाब देने की कोई ज़रूरत भी आज तक महसूस नहीं हुई है, क्योंकि जब पूरी सरकार, पुलिस और प्रशासन उनके पक्ष में है तो भला जवाबदेही किस बात की?**

लेकिन 7-8 नवम्बर को बर्ख़ास्त और गिरफ्तार मज़दूरों ने फिर से आन्दोलन का बिगुल फूँक दिया। 7 नवम्बर को मज़दूरों ने भूख हड़ताल की। उनके पक्ष में जेल में बन्द मज़दूरों ने भी भूख हड़ताल की, हालाँकि पुलिस प्रशासन ने उन्हें काफ़ी डराया-धमकाया था। 8 नवम्बर को मज़दूरों ने एक रैली निकालकर नेताओं और नौकरशाहों को अपना माँगपत्रक और ज्ञापन सौंपा। इस प्रदर्शन के दौरान **'बिगुल मज़दूर दस्ता'** की ओर से वितरित पर्चे में मज़दूरों के साथ एकजुटता का आह्वान किया गया और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अनेक मज़दूर कार्यकर्ता इस रैली में शामिल भी हुए। इसके बाद, 12 नवम्बर को **मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन** ने हरियाणा के उद्योग मन्त्री रणदीप सुरजेवाला के निर्वाचन क्षेत्र कैथल में एक रैली रखी। ज्ञात हो कि सैंकड़ों मारुति के मज़दूरों के घर जीन्द और कैथल जिले में ही हैं। इस रैली में 'बिगुल मज़दूर दस्ता' ने एक चार पृष्ठ का पर्चा **'आगे का रास्ता क्या हो?'** का वितरण किया जिसमें यह आह्वान किया गया था कि मारुति सुज़ुकी के संघर्षरत मज़दूरों को गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल के समस्त मज़दूरों के साथ इलाकाई एकता कायम करनी होगी क्योंकि ऐसी व्यापक इलाक़ाई एकजुटता के बिना संघर्ष का सफल हो पाना मुश्किल होगा। इस रैली में भी सैंकड़ों की संख्या में मज़दूर शामिल हुए। यहाँ पर भी उन्होंने अपने माँगपत्रक और ज्ञापन नेताओं-नौकरशाहों को सौंपे। लेकिन अब तक की लड़ाई से एक बात स्पष्ट होने लगी थी। वह यह थी कि जब तक मारुति सुज़ुकी के मज़दूर अपने संघर्ष को अपने कारख़ाने की चौहद्दी से बाहर नहीं ले जायेंगे, तब तक उनके सामने कई सीमाएँ बनी रहेंगी।

12 नवम्बर के प्रदर्शन के बाद भी मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन का प्रतिनिधि-मण्डल लगातार हरियाणा सरकार के प्रतिनिधियों से मुलाकात करता रहा। लेकिन सरकार के मन्त्री और नौकरशाह उन्हें एक दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े तक दौड़ाते रहे। इसके बाद 26 नवम्बर को फरीदाबाद में श्रम मन्त्री शिवचरण शर्मा के आवास पर यूनियन की ओर से प्रदर्शन भी किया गया। लेकिन यहाँ भी कोरे वायदे ही मिले। हरियाणा सरकार और प्रशासन भी यह समझ रहा है कि कुछ सौ मज़दूर यदि अपने कारख़ाने की लड़ाई को कारख़ाने की चौहद्दी के भीतर ही कैद रखेंगे तो वह उन्हें एक दर से दूसरे दर तक दौड़ाते रहेंगे और अन्त में मज़दूर खुद ही थककर घर बैठ जायेंगे और कोई अन्य रोज़गार खोजना शुरू कर देंगे और इस तरह कम्पनी और प्रबन्धन अपनी तानाशाही को जारी रखने में कामयाब हो जाएँगे। इस दौरान भी 'बिगुल मज़दूर दस्ता' लगातार दो प्रस्ताव रखता रहा था। पहला यह कि आन्दोलन को संयंत्र के दायरे से बाहर निकालकर पूरी ऑटोमोबाइल औद्योगिक पट्टी में फैलाना होगा। ऑटोमोबाइल पट्टी के अधिकांश कारख़ानों में वही मुद्दे हैं जो कि मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के सामने हैं और अगर समस्त ऑटोमोबाइल मज़दूरों के मुद्दे एक हैं, तो उनका संघर्ष भी एक होना चाहिए, क्योंकि पूँजी की ताक़तें कारख़ानों के आधार पर नहीं बँटी हैं। वे एकजुट होकर मज़दूर वर्गों के हितों पर हमला कर रही हैं, और सरकार और प्रशासन पूरी तरह उनके साथ है। ऐसे में, मज़दूर भी कारख़ानों के आधार पर बँटे रहकर अपनी लड़ाई नहीं जीत सकते हैं। दूसरा प्रस्ताव यह था कि मारुति सुज़ुकी मज़दूरों को नयी दिल्ली में जन्तर-मन्तर पर एक बड़ा प्रदर्शन करना चाहिए। इसके ज़रिये तीन लक्ष्य पूरे होंगे। पहला, अगर मारुति सुज़ुकी के मज़दूर दिल्ली की सड़कों पर उतरेंगे तो उनका पक्ष दिल्ली की आम जनता के बीच जायेगा, जिसके बीच अब तक पूँजीवादी मीडिया ने यह प्रचार किया है कि मारुति के मज़दूर अपराधी हैं। दूसरा, राष्ट्रीय मीडिया मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के प्रदर्शन को दिखलाने के लिए बाध्य होगा क्योंकि अगर सैकड़ों मारुति सुज़ुकी मज़दूर नयी दिल्ली की सड़कों पर उतरेंगे तो मीडिया इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता है, क्योंकि उसकी निष्पक्षता पर हाल में पहले ही कई सवाल खड़े हो चुके हैं और अगर उसे अपनी साख बचानी है तो उसे मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के आन्दोलन को दिखलाना होगा। मीडिया में ह्युण्डई समर्थक लॉबी वैसे भी मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के प्रदर्शन को ज़रूर अपने अख़बारों और चैनलों में जगह देगी, और अगर कुछ चैनल और अख़बार भी मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन को कवरेज देते हैं, तो बाकियों को भी कवरेज देने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। तीसरा लक्ष्य जो दिल्ली में प्रदर्शन से पूरा होगा वह यह कि केन्द्र सरकार और प्रशासन पर भारी दबाव पड़ेगा कि वह मारुति सुज़ुकी मज़दूरों की बात को सुने और उनकी माँगों पर कुछ कार्रवाई करे।

इलाक़ाई उभार और दिल्ली में संघर्षरत मज़दूरों के प्रदर्शन के प्रस्ताव को दबाने की कई प्रतिकूल ताक़तों ने पर्याप्त कोशिश की। लेकिन अन्ततः मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन ने 2 दिसम्बर को इलाक़ाई मज़दूर एकता का आह्वान करने और 9 दिसम्बर को दिल्ली में ऑटो मज़दूरों की जुटान करने का निर्णय लिया। आख़िरी समय तक कुछ प्रतिकूल ताक़तें यह कोशिश करती रहीं कि अम्बेडकर भवन, नयी दिल्ली में तय ऑटो मज़दूर सम्मेलन को प्रदर्शन में तब्दील न किया जा सके। लेकिन अन्ततः मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के नेतृत्व में मज़दूरों की शक्ति की विजय हुई और 9 दिसम्बर को अम्बेडकर भवन में सम्मेलन के बाद समस्त मज़दूर एक विशाल जुलूस की शक्ल में झण्डेवालान, पहाड़गंज, कमला मार्केट और बाराखम्बा रोड होते हुए करीब 5 किलोमीटर की दूरी तय करके जन्तर-मन्तर पहुँचे और वहाँ प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन के दबाव के कारण रविवार के दिन भी प्रधानमन्त्री कार्यालय को मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के प्रतिनिधि मण्डल से मुलाकात करके उनका ज्ञापन और माँगपत्रक स्वीकार करना पड़ा। यह मज़दूरों की इलाक़ाई एकजुटता और देश की राजधानी की सड़कों पर उतरकर प्रदर्शन करने का फैसला ही था जिसके कारण यह विजय हासिल हुई थी। इसके एक दिन बाद ही हरियाणा के मुख्यमन्त्री भूपेन्द्र हुड्डा के पुत्र दीपेन्द्र हुड्डा ने यूनियन के नेतृत्व की मुलाकात लेबर कमिश्नर से करायी और अब ऐसी उम्मीद बन रही है कि मज़दूरों की माँगों की सुनवाई होगी।

लेकिन अभी यह संघर्ष जीत से बहुत दूर है। अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इस समय जो बात हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण है वह है एक दीर्घकालिक योजना का होना। बिना योजना के कभी किसी प्रशासनिक कार्यालय, किसी मन्त्री के आवास या दफ्तर तो कभी किसी सार्वजनिक स्थान पर प्रदर्शन कर देने मात्र से हमारा आन्दोलन जीत नहीं सकता है। मारुति सुज़ुकी मज़दूरों के आन्दोलन को जीतने के लिए एक ऐसी दीर्घकालिक योजना की ज़रूरत है जो कदम-दर-कदम संघर्ष के उन्नततर रूपों को अपनाये और एक सलीके से सीढ़ी-दर-सीढ़ी आगे बढ़ता जाये। जन्तर-मन्तर पर प्रदर्शन और प्रधानमन्त्री को ज्ञापन देना हमारे लिए पहली सीढ़ी थी। अब हमें उस ज्ञापन पर कार्रवाई करवाने के लिए दबाव डालना होगा और इसके लिए हमें एक दिन नहीं बल्कि दो या तीन दिन के जुझारू धरने के जरिये केन्द्र सरकार और हरियाणा सरकार को अल्टीमेटम देना होगा। यह अल्टीमेटम पूरा न होने पर हमें दो या तीन दिवसीय प्रतीकात्मक भूख हड़ताल, लम्बी क्रमिक भूख हड़ताल, अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल और फिर आमरण अनशन और मज़दूर सत्याग्रह तक के रूप अपनाने पड़ सकते हैं। यदि मज़दूर अपने हक़ों के लिए संगठित और एकजुट होकर पूरे हौसले के साथ लड़ने को तैयार हैं तो हम इस रास्ते से अपने संघर्ष की विजय तक पहुँच सकते हैं। प्रार्थनाओं, याचिकाओं और ज्ञापनों का दौर अब बीत चुका है। अब लड़ाई को सड़कों पर आगे बढ़ाने का काम करना है और इसे ऑटो मज़दूरों के व्यापक मज़दूर सत्याग्रह तक ले जाना ही एकमात्र रास्ता है। इस पूरे संघर्ष के दौरान हमें मारुति सुज़ुकी और ईस्टर्न मेडिकेट के मज़दूरों के मुद्दों को तो उठाना ही होगा, लेकिन साथ ही हमें पूरे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल की औद्योगिक पट्टी के मज़दूरों का एक साझा माँगपत्रक तैयार कर उसे भी सरकार और प्रशासन के सामने रखना होगा। इस पूरी औद्योगिक पट्टी के मज़दूरों की सहानुभूति मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के संघर्ष के साथ है। इस सहानुभूति को सक्रिय एकजुटता में बदलने के लिए हमें उनकी माँगों को भी अपने माँगपत्रक में शामिल करना होगा। इसमें हमें स्वतन्त्र यूनियन बनाने के हक़ और ऑटोमोबाइल सेक्टर में ठेका प्रथा को समाप्त करने की माँग को सबसे ऊपर रखना होगा। निश्चित तौर पर हमारे आन्दोलन की तात्कालिक माँगें मारुति सुज़ुकी के गिरफ्तार मज़दूरों की रिहाई और बर्ख़ास्त मज़दूरों की बहाली, और ईस्टर्न मेडिकेट के मज़दूरों की माँगें होंगी, क्योंकि इस समय आन्दोलन की आग इन्हीं जगहों पर जल रही है। लेकिन इन तात्कालिक और ठोस माँगों को रखने के साथ ही हमें समस्त ऑटोमोबाइल मज़दूरों के साझा माँगपत्रक को भी सरकार और प्रशासन के सामने रखना होगा। यह

(पेज 6 पर जारी)

9 दिसम्बर को अम्बेडकर भवन के सम्मेलन से जन्तर-मन्तर की ओर मार्च करते हुए मज़दूर

मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आन्दोलन इलाक़ाई मज़दूर उभार की दिशा में

(पेज 5 से आगे)

गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा- बावल के समस्त मज़दूरों के बीच एक दीर्घकालिक इलाक़ाई वर्ग एकजुटता का बीज डालेगा। इस बीज के अंकुरण और इसके एक शक्तिशाली वृक्ष में तब्दील होने में समय लग सकता है। लेकिन हमें इसकी शुरुआत आज ही करनी होगी, हमें बीज आज ही डालना होगा। यह न सिर्फ आज के जारी संघर्ष को जीतने के लिए ज़रूरी है बल्कि भविष्य में इस पूरी औद्योगिक पट्टी के सभी भावी संघर्षों के लिए ज़रूरी है। सन् 2000 में मारुति के निजीकरण की शुरुआत के साथ ही इस पूरी औद्योगिक पट्टी में मज़दूर आन्दोलनों की एक श्रृंखला शुरू हुई है जो होण्डा, रिको, ओरियेण्ट क्राफ्ट के संघर्षों से होते हुए आज मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के संघर्ष तक पहुँच चुकी है। **इस एक दशक से जारी संघर्ष के अनुभवों का निचोड़ हमें क्या बताता है? हमें दो औज़ारों की ज़रूरत है–पहला, इलाक़ाई मज़दूर वर्ग एकजुटता और इलाक़ाई मज़दूर उभार, और दूसरा, एक सूझबूझ वाला क्रान्तिकारी राजनीतिक नेतृत्व।** अगर हम आने वाले समय में अपने ये दो औज़ार गढ़ सके तो यह न सिर्फ इस औद्योगिक पट्टी के मज़दूर आन्दोलन के लिए एक मिसाल बन जायेगी, बल्कि पूरे देश के मज़दूर आन्दोलन के सामने एक अनुकरणीय उदाहरण बन जायेगा। हम चुनावी पार्टियों (चाहे उनके झण्डे का रंग कोई भी हो!) की केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों पर भरोसा नहीं कर सकते। अब तक उनपर भरोसा करने का सबक क्या रहा है? सिर्फ और सिर्फ धोखा! हमें अपना व्यापक, शक्तिशाली और सूझबूझ वाला नेतृत्व स्वयं विकसित करना होगा। मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का संघर्ष वह दहनभट्ठी बन सकता है, जिसमें तपकर इस पूरे इलाक़े के मज़दूरों का नेतृत्व उभर सकता है। आने वाले समय में, चाहे हमारे मौजूदा संघर्ष का नतीजा कुछ भी निकले, हमें **समस्त ऑटोमोबाइल मज़दूरों की एक यूनियन** बनाने की ओर आगे बढ़ना होगा, यानी कि हमें इस पूरे औद्योगिक सेक्टर के मज़दूरों की एक शक्तिशाली यूनियन बनाने की ओर आगे बढ़ना होगा। और इसके साथ ही हमें एक **इलाक़ाई पैमाने की मज़दूर यूनियन** को संगठित करने की तैयारी भी इस पूरी औद्योगिक पट्टी की मज़दूर बस्तियों में करनी होगी, जिसमें न सिर्फ ऑटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूर शामिल हों, बल्कि इस पूरे औद्योगिक क्षेत्र के समस्त उद्योगों के मज़दूर शामिल हों। यानी **हमें एक ओर तो मज़दूरों की सेक्टरगत यूनियनों का निर्माण करना होगा, वहीं हमें इस समूचे औद्योगिक क्षेत्र के सभी उद्योगों के मज़दूरों की एक इलाक़ाई यूनियन का निर्माण भी करना होगा।** ये हमारे दूरगामी कार्यभार हैं। लेकिन तात्कालिक कार्यभारों को पूरा करते हुए हमें अपने दूरगामी कार्यभारों पर भी निगाह रखनी होगी और क्रमिक प्रक्रिया में उस ओर आगे बढ़ना होगा।

उपरोक्त तात्कालिक कार्यभारों और दूरगामी कार्यभारों को समझकर उसके अनुरूप योजना बनाये बग़ैर हम आगे नहीं बढ़ सकते। हमारे दुश्मन, यानी कि पूँजी की ताक़तें आगे के 20 साल के बारे में सोचकर योजना बनाती हैं, और उस योजना को एकजुट होकर अमल में उतारती हैं। लेकिन हम कहीं न कहीं अपनी तात्कालिक माँगों, तात्कालिक रणनीति और रणकौशल और तात्कालिक हितों तक ही सीमित रह जाते हैं। हम भी यदि आने वाले लम्बे समय की योजना बनाकर और दिशा तय करके नहीं चलेंगे, तो अगर हम कुछ लड़ाइयाँ जीत भी जायें तो हमारा आन्दोलन बहुत आगे नहीं जा पायेगा। यह लड़ाई श्रम की शक्तियों और पूँजी की शक्तियों के बीच लम्बे राजनीतिक संघर्ष का एक हिस्सा है। **हमें उस लम्बे राजनीतिक संघर्ष को भी समझना होगा ताकि हम तात्कालिक योजना के लिए भी सही दिशा को अपना सकें।**

केजरीवाल की 'आम आदमी पार्टी' और भ्रष्टाचार–विरोधी आन्दोलन

(पेज 7 से आगे)

केजरीवाल के तमाशे के अन्त में बताशा भी नहीं मिलने वाला।

तीसरा सवाल भी महत्वपूर्ण है! अरविन्द केजरीवाल, मनीष सिसोदिया जैसे 'इण्डिया अगेंस्ट करप्शन' के लोग मुख्य रूप से एन.जी.ओ. चलाने वाले बड़े खिलाड़ी हैं। हाल में हुए खुलासों से पता चला है कि इनके एन.जी.ओ. को पैसा देने वाली दाता एजेंसियों में फोर्ड फाउण्डेशन, एक्शन एड, रैण्ड कारपोरेशन आदि जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा चलायी जाने वाली संस्थाएँ हैं। केजरीवाल के ही एन.जी.ओ. को इन साम्राज्यवादी एजेंसियों से मिलने वाला चन्दा कई करोड़ रुपयों का है! क्या केजरीवाल को पता नहीं है कि ये साम्राज्यवादी एजेंसियाँ वही हैं जिन्होंने भारत और भारत जैसे तमाम देशों की जनता को लूट-खसोटकर अपना मुनाफ़े का साम्राज्य पैदा किया है? क्या केजरीवाल को पता है कि इन एजेंसियों को पैसा देने वाली वे कम्पनियाँ भी हैं, जिनके कारण 50 पैसे की लागत से बनने वाली जीवन-रक्षक दवाइयाँ भारत में कई सौ रुपयों में बिकती हैं, जिनके कारण ग़रीब सड़कों पर तड़प-तड़पकर मरते हैं? केजरीवाल जैसों को क्या यह मालूम नहीं है कि इन साम्राज्यवादी एजेंसियों ने कई लातिन अमेरिकी और अफ्रीकी देशों में जनता द्वारा लोकतान्त्रिक रूप से चुनी गयी सत्ताओं का खूनी तख्तापलट करवाने के लिए अमेरिका के टट्टू सेना जनरलों को अकूत धन और हथियार मुहैया कराये, ताकि अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी और फ्रांस जैसे देशों के साम्राज्यवादी हितों को कोई नुकसान न पहुँचे? निश्चित तौर पर, केजरीवाल इतने मूर्ख और अज्ञानी नहीं होंगे कि उन्हें यह पता न हो। लेकिन फिर भी इन्हीं साम्राज्यवादी एजेंसियों के फेंके हड्डी के टुकड़ों पर श्रीमान सुथरा यानी अरविन्द केजरीवाल की पूरी राजनीति चलती है! इसी से काफी-कुछ पता चलता है।

अरविन्द केजरीवाल के "आन्दोलन" को जिन वर्गों का समर्थन प्राप्त है, उनमें से सबसे महत्वपूर्ण है शहरी उच्च मध्यवर्ग। यह वह वर्ग है जो पूँजीवादी व्यवस्था के लिए सबसे अहम उपभोक्ता वर्ग है। 22 वर्षों की नवउदारवादी नीतियों ने इस वर्ग को काफ़ी-कुछ दिया है। दुनिया भर के ब्राण्ड इस वर्ग की पहुँच में हैं। इस वर्ग ने पश्चिमी आधुनिकता का स्वाद चखा है लेकिन इसने अपनी अन्धराष्ट्रवादी (अक्सर धार्मिक कट्टरपंथ के साथ) सोच को बनाये रखा है। यह वह वर्ग है जो हॉलीवुड की फिल्मों में दिखायी जाने वाली दुनिया चाहता है–साफ-सुथरे पार्क, चमकते शॉपिंग मॉल, नागरिकों की सेवा करने वाली पुलिस और नौकरशाही (जाहिर है कि उसके लिए नागरिक का अर्थ उपभोक्ता है), बढ़िया स्कूल और कॉलेज, सुपर-स्पेशियैलिटी अस्पताल, एक सैन्य रूप से शक्तिशाली देश, सशक्त उच्च मध्य वर्ग आदि। यह एक विशिष्ट और निश्चित छवि है, जिसकी आकांक्षा इस उच्च मध्यवर्ग को है। उसके पास आर्थिक शक्ति आयी है और अब वह कुछ राजनीतिक शक्ति चाहता है। केजरीवाल का "आन्दोलन" उसे आकर्षित करता है क्योंकि वह एक ऐसी ही पूँजीवादी व्यवस्था का सपना उसे दिखाता है, जो भ्रष्टाचार-मुक्त होगा, साथ-सुथरा होगा, जिसमें हर चीज़ सलीके से चलेगी, कुछ गड़बड़ नहीं होगा! एक अहम बात यह भी है कि देश के मेहनतकश वर्गों को अगर इतनी ही सुविधाएँ और अधिकार न मिले तो उसे कोई दिक्कत नहीं है। उसके लिए ये अक्षम और कामचोर लोग हैं और व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें योग्यता और 'मेरिट' की पूछ हो! किसी भी किस्म के कल्याणवाद का यह वर्ग समर्थन नहीं करता। अपने वर्ग स्वभाव से वह नवउदारवादी बाज़ार पूँजीवाद का समर्थक है, बशर्ते कि वह भ्रष्टाचार-मुक्त हो!

चाहे जो भी हो, एक बात तो बिल्कुल साफ़ है–अरविन्द केजरीवाल और उनके टोपीधारी चेले-चपाटियों की नौटंकी से इस देश की मेहनतकश जनता को कुछ भी नहीं मिलने वाला है। यह एक भ्रम है, एक छलावा है, जिसमें देश का टटपुंजिया और निम्न मध्यवर्ग कुछ समय तक फँसा रह सकता है। लेकिन केजरीवाल एण्ड पार्टी के संसद और विधानसभा के मलकुण्ड में उतरने के बाद यह भ्रम भी समाप्त हो जायेगा। मज़दूर वर्ग तो एक दिन भी इस भ्रम का ख़र्च नहीं उठा सकता है। हर जगह जहाँ मज़दूर दबाये-कुचले जा रहे हैं, सघर्ष कर रहे हैं, लड़ रहे हैं, वे जानते हैं कि केजरीवाल एण्ड पार्टी उनके लिए कुछ भी नहीं करने वाली। यह पढ़े-लिखे, खाते-पीते मध्यवर्ग के लोगों की नेताओं-नौकरशाहों के प्रति शिकायत को दर्ज़ कराने वाली पार्टी है और यह वास्तव में शासक वर्ग के ही दो हिस्सों के बीच देश में पैदा हो रहे अधिशेष के बँटवारे की कुत्ताघसीटी में उच्च मध्यवर्ग के हितों की नुमाइन्दगी कर रही है। मज़दूर वर्ग को इस भ्रम और छलावे में एक पल को भी नहीं पड़ना चाहिए। उसे समझ लेना चाहिए कि उसे बेहतर, अच्छा, भला या सन्त पूँजीवाद नहीं चाहिए (वैसे यह सम्भव भी नहीं है!), उसे पूँजीवाद का विकल्प चाहिए! उसे क्रान्तिकारी लोकस्वराज्य चाहिए!

बंग्लादेश की हत्यारी गारमेंट फैक्टरियां

(पेज 12 से आगे)

की मांग करता है और यह बड़े पैमाने पर रोज़गार देने वाला काम है जिसमें महिलाओं का अनुपात अपेक्षाकृत काफ़ी ज़्यादा है। सस्ते माल उत्पादन के लिए बड़ी-बड़ी विदेशी कम्पनियां बंग्लादेशी कम्पनियों को काम आउटसोर्स करती हैं और मानवाधिकारों के लिए दुनियाभर में घड़ियाली आंसू बहाने के बावजूद वे खुद अपना काम करने वाली फ़ैक्टरियों के नारकीय हालात के बारे में अक्सर चुप ही रहती हैं। ताजरीन नामकी जिस फ़ैक्टरी में हालिया घटन घटी उसे अभी पिछले ही साल वालमार्ट ने ''उच्च जोखिम'' की रेटिंग दी थी। घटना के बाद वालमार्ट ने जल्दी यह स्वीकार भी नहीं किया कि ताजरीन में उसका काम होता था। वो तो जली हुई फ़ैक्टरी की राख उलटते-पुलटते हुए लोगों को वालमार्ट का टैग मिला जिससे इस तथ्य की पुष्टि हुई।

शोषण-उत्पीड़न के इस पूरे पूँजीवादी तंत्र में में स्थानीय राजनेता उनका पूरा साथ देते हैं। बल्कि इससे भी आगे बढ़कर वे इन देशी-विदेशी कंपनियों के मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए उदारीकरण की नीतियां लागू करते हैं श्रम कानूनों को और भी निष्प्रभावी बनाते जाते हैं और मज़दूर वर्ग के हित के प्रति एकदम आंख मूंदे रहते हैं। उनके इस काम में संशोधानवादी वामपन्थी पार्टियां भी पूरा साथ देती हैं जिन्होंने मज़दूर आन्दोलन को आज अपने रसातल में पहुंचा दिया है। यूं ही नहीं उन्हें बुर्जुआ जनवाद की दूसरी सुरक्षा पंक्ति कहा जाता है।

इस घटना के बाद बंग्लोदश में एक दिन के राष्ट्रीय शोक की घोषणा की गयी। झण्डे आधा झुका दिए गए। मृत मज़दूरों के परिवारों को आर्थिक मुआवजा देने की घोषणाएं की गईं। लेकिन इस जघन्य हत्याकाण्ड को अंजाम देने वाले अभी भी पकड़े नहीं गए हैं। मज़दूरों की स्थितियों को सुधारने के लिए अभी तक कोई कदम नहीं उठाए गए हैं। भविष्य में ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए कोई कारगर प्रयास अभी तक शुरू नहीं किया गया है। केवल तात्कालिक खानापूरी की जा रही है।

बंग्लादेश का मज़दूर वर्ग बिल्कुल उन्हीं परिस्थितियों और परेशानियों से गुजर रहा है जिससे होकर भारत का मज़दूर वर्ग गुजर रहा है। आज दुनिया के ज़्यादातर देशों में मज़दूरों के हालात एक जैसे संगीन हैं। आज दुनिया के पैमाने पर मज़दूरआन्दोलन भी पहले की अपेक्षा कमजोर स्थिति में है। ऐसी परिस्थिति में बेहद ज़रूरी है कि दुनियाभर के मज़दूर एकसाथ मिलकर अपनी मुक्ति की लड़ाई लड़ें। आज की परिस्थितियों ने पूरी दुनिया के मज़दूरों को एक दूसरे के एकदम करीब ला दिया है। उन्हें एक अदृश्य श्रृंखला में जोड़ दिया है और इसने पूरी दुनिया के मज़दूर वर्ग के सहयोग की नयी परिस्थिति उत्पन्न कर दी हैं!

– जय पुष्प

स्तालिन के जन्मदिवस (18 दिसम्बर) के अवसर पर

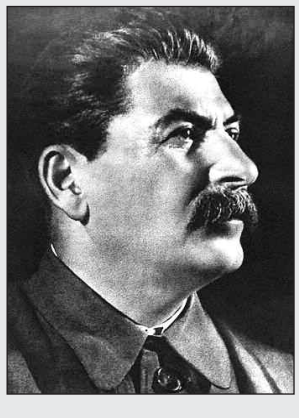

''यह बिना जाने कि हमें किस दशा में जाना चाहिए, बिना जाने की हमारी गति का लक्ष्य क्या है, हम आगे नहीं बढ़ सकते। हम तब तक निर्माण नहीं कर सकते, जब तक कि हम बात की सम्भावना और निश्चय न हो कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के निर्माण का आरम्भ करके उसे पूरा कर सकेंगे। पार्टी बिना स्पष्ट सम्भावना, बिना स्पष्ट लक्ष्य के निर्माण के काम का पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकती। हम बर्नस्टाइन के विचारों के अनुसार नहीं कह सकते कि 'गति सब कुछ है, और लक्ष्य कुछ नहीं।' इसके विरुद्ध क्रान्तिकारियों की तरह हमें अपनी प्रगति, अपने व्यावहारिक काम को सर्वहारा-निर्माण के मौलिक वर्ग-लक्ष्य के अधीन करना होगा। नहीं तो, निस्सन्देह और अवश्य ही हम अवसरवाद के दल-दल में जा गिरेगें।''

–स्तालिन, 1926, (पार्टी की पन्द्रहवीं कांफ्रेंस में भाषण से)

केजरीवाल की `आम आदमी पार्टी' और भ्रष्टाचार–विरोधी आन्दोलन

(पेज 1 से आगे)

शिकायतों की नुमाइन्दगी करती है। वास्तविक आम आदमी से उसका कोई लेना-देना नहीं है। हम 'मज़दूर बिगुल' के अगले अंक में आम आदमी पार्टी के घोषणापत्र की एक विस्तृत आलोचना रखेंगे। ख़ैर, अरविन्द केजरीवाल रोज़ टोपी पहले अपने जोकरों के साथ तमाम चुनावी पूँजीवादी पार्टियों के नेताओं के बारे में 'खुलासे' कर रहे हैं। वह अपनी जोकर मण्डली के साथ यह बता रहे हैं कि कौन-सा नेता कितना भ्रष्ट है। लेकिन यहाँ कई सवाल उठते हैं। पहला सवाल यह उठता है कि क्या केजरीवाल के आने से पहले लोगों को यह पता नहीं था कि भारतीय पूँजीवादी राजनीति में भ्रष्टाचार का बोलबाला है? क्या लोगों को यह पता नहीं था कि संसद और विधानसभाओं में बैठने वालों और चोरों, उचक्कों, लुटेरों, रहजनों और उठाईगीरों के गिरोह में अब ज़्यादा फर्क नहीं रह गया है? निश्चित तौर पर, देश की आम जनता पहले से ही इस सत्य को जानती थी। ऐसे में, केजरीवाल नया सिर्फ़ इतना कर रहे हैं कि वह इस भ्रष्टाचार के आकार-प्रकार और मात्रा का खुलासा कर रहे हैं और अलग-अलग मन्त्रियों के नाम लेकर कर रहे हैं। इस पूरे उपक्रम को मीडिया सनसनीखेज बनाकर पेश कर रहा है। पूँजीवादी राजनीति में 'तू नंगा-तू नंगा' का जो खेल पहले टेस्ट मैच की रफ्तार से चल रहा था वह अब 20-20 का मैच बन गया है! एक दिन केजरीवाल किसी के बारे में कोई खुलासा कर देते हैं तो अगले दिन कांग्रेस के दिग्विजय सिंह केजरीवाल के बारे में कुछ खुलासे कर देते हैं। और जब-जब इस लंगोट-खोल कबड्डी में किसी की "इज़्ज़त" नीलाम होती है तो शहरी मध्यम वर्ग को ऑफिसों और कार्यालयों में मसालेदार चर्चा का एक नया मसला मिल गया है–आज किसने किसको कितना नंगा किया? लेकिन इस पूरे तमाशे से भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचारियों की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ने वाला! न ही मुनाफ़े की लूट पर टिकी व्यवस्था पर कोई फ़र्क पड़ने वाला है। होगा बस इतना कि इस मुद्दे को इस हद तक रगड़ दिया जायेगा कि आम जनता के लिए भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचारी पहले से भी ज़्यादा आम और स्वीकार्य मसले बन जायेंगे। फौरी तौर पर, नेताओं और नौकरशाहों को खूब गालियाँ पड़ेंगी और लोगों का गुस्सा थोड़ा निकल जायेगा; शायद अगले चुनाव में लोग सत्ताधारी पार्टी को कम वोट दें, और किसी अन्य पार्टी को अधिक; लेकिन इससे पूँजीवादी व्यवस्था का बाल भी बाँका नहीं होने वाला। वास्तव में अरविन्द केजरीवाल और उनकी वानर सेना मौजूदा पूँजीवादी मुनाफ़ाखोर व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं पेश करते। वे इसी लुटेरी व्यवस्था के दामन पर से खून के धब्बे साफ़ करके उसे अधिक सुचारू रूप से चलाने की वकालत करते हैं। अब यह बात दीगर है कि पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर भ्रष्टाचार कोई भटकाव नहीं है, बल्कि इसकी अनिवार्य पैदावार है। जब तक निजी मुनाफ़े, लोभ, लालच और लूट पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था रहेगी, तब तक घूसखोरी, भाई-भतीजावाद आदि मौजूद रहेंगे। जब तक पूँजीवादी व्यवस्था कायम रहेगी तब तक भ्रष्टाचार भी रहेगा, बल्कि, यह कहना चाहिए कि पूँजीवादी व्यवस्था स्वयं एक भ्रष्टाचार है। लेकिन अरविन्द केजरीवाल एक ऐसा मूर्खतापूर्ण सपना इस देश के मध्यवर्ग को दिखा रहे हैं जो कि कभी पूरा हो ही नहीं सकता–यानी, भ्रष्टाचार-मुक्त, भला और सन्त पूँजीवाद! इस मूर्खतापूर्ण सपने को ही केजरीवाल 'व्यवस्था-परिवर्तन' का नाम देते हैं। इस बात की उम्मीद कम है कि केजरीवाल खुद इस बात की मूर्खता को नहीं समझते हैं। अरविन्द केजरीवाल जानते हैं कि ऐसी कोई पूँजीवादी व्यवस्था हो ही नहीं सकती। ऐसे में, केजरीवाल जो कर रहे हैं, उससे दो मकसद पूरे होते हैं। एक तो जनता का भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचारियों के ख़िलाफ़ गुस्सा थोड़ा निकलना चाहिए, और इसके लिए केजरीवाल पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर एक सुरक्षित रास्ता सुझाते हैं! दूसरा काम जो केजरीवाल अपने भ्रष्टाचार-विरोधी अभियान के नाम पर कर रहे हैं, वह है अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को पूरा करना। केजरीवाल भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ जनता के गुस्से की लहर पर सवार होकर संसद के गलियारों में पहुँचना चाहते हैं। लेकिन चाहे जो भी हो केजरीवाल पूँजीवादी व्यवस्था के ध्वंस और उसके विकल्प की बात नहीं करते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि उत्पादन और वितरण की मौजूदा व्यवस्था के कायम रहते क्या भ्रष्टाचार की समस्या का समाधान सम्भव है? इसके बारे में हम 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंकों में भी विस्तार में लिख चुके हैं। जब तक एक ऐसी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था कायम है जिसमें पूरा उत्पादन और वितरण तन्त्र समाज की ज़रूरतों के लिए काम नहीं करता बल्कि पूँजीपतियों के निजी मुनाफ़े के लिए काम करता है, तब तक भ्रष्टाचार की समस्या का कोई समाधान नहीं है। जिस सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने की बुनियाद में ही मुनाफ़े, लोभ और लालच की संस्कृति व्याप्त हो, वहाँ का राजनीतिक ढाँचा भी वैसा ही होगा और आप उसमें सन्त नेताओं और नौकरशाहों की उम्मीद नहीं कर सकते। ऐसी किसी भी व्यवस्था में नेताओं और नौकरशाहों का पूरा वर्ग उनकी ही सेवा करेगा जिनके हाथ में पूँजी होगी, यानी कि पूँजीपति वर्ग। मुनाफ़े की हवस कभी भी नियमों-कानूनों के दायरे में नहीं रह सकती। हालाँकि आज के नियम और कानून जिस प्रकार की उत्पादन व्यवस्था की रखवाली करते हैं, वह स्वयं एक भ्रष्टाचार है। बुर्जुआ अर्थशास्त्र भी मानता है कि मानवीय श्रम और प्रकृति ही समस्त संसाधनों को जन्म देते हैं और लिहाज़ा देश के समस्त संसाधन पूरे देश की जनता के मालिकाने के तहत होने चाहिए न कि निजी पूँजीपतियों के मालिकाने में। मूल्य के श्रम सिद्धान्त का जन्म मार्क्स से पहले के क्लासिकीय बुर्जुआ अर्थशास्त्री कर चुके थे। एडम स्मिथ और रिकार्डो भी इस बात को मानते थे कि हर प्रकार के मूल्य के दो ही सम्भव स्रोत हैं–मेहनत और कुदरत। जाहिर है, ऐसे में सबसे न्यायपूर्ण बात यही होगी कि समस्त मेहनतकश वर्ग साझे तौर पर समूचे खेतों-खलिहानों, कल-कारखानों, खानो-खदानों का मालिक हो। तो ज़रा सोचें कि ऐसी कोई भी व्यवस्था जो संसाधनों के 85 फीसदी को ऊपर के 15 फीसदी धनपतियों की निजी सम्पत्ति बनाती हो, और वह भी कानूनी तौर पर, वह स्वयं एक भ्रष्टाचार नहीं तो और क्या है? लेकिन केजरीवाल इसे भ्रष्टाचार नहीं मानते हैं।

केजरीवाल ने हाल में अम्बानी द्वारा गैस की कीमतों को बढ़ाने के लिए सरकार पर दबाव डाले जाने और उस दबाव के कारण "ईमानदार" मन्त्री जयपाल रेड्डी को हटाये जाने के बारे में भण्डाफोड़ करते हुए कहा कि यह "साँठ-गाँठ करने वाला पूँजीवाद" है! यह एक दिलचस्प बयान था! जाहिर है कि केजरीवाल साँठ-गाँठ करने वाले पूँजीवाद के ख़िलाफ़ हैं। इसका यही अर्थ है कि वह एक ऐसे पूँजीवाद के ख़िलाफ़ हैं जो साँठ-गाँठ करता हो, यानी भ्रष्ट हो! लेकिन इसी बयान से यह भी साफ़ है कि केजरीवाल ऐसे पूँजीवाद की मुख़ालफत नहीं करते जो भ्रष्टाचारी न हो, साँठ-गाँठ न करता हो! इसीलिए वह अम्बानी-ब्राण्ड पूँजीपतियों की मुख़ालफ़त करते नज़र आ रहे हैं, जो कि चिन्दीचोरी, घपले, और सेंधमारी जैसे तरीकों से भारतीय पूँजीवाद के शिखर पर पहुँचा है। लेकिन टाटा और बजाज जैसे खानदानी पूँजीपतियों का समर्थन केजरीवाल को प्राप्त है! हालाँकि, यह टाटा ही था जिसके कारपोरेट भ्रष्टाचार और सरकार पर दबाव डाल कर ए.राजा को टेलीकॉम मन्त्री बनाये जाने के कृत्य का टाटा-राडिया टेपों के जरिये खुलासा हो चुका है। निश्चित तौर पर, यह एक नग्न और खुला भ्रष्टाचार था। लेकिन केजरीवाल टाटा के बारे में कोई बयान देते नज़र नहीं आते, और टाटा केजरीवाल के भ्रष्टाचार-दलन अभियान का समर्थन करते नज़र आते हैं! केजरीवाल और टाटा के बीच प्यार की आग दोतरफ़ा है! केजरीवाल ने अम्बानी पर भी सवाल सिर्फ़ इसलिए उठाया था क्योंकि उनके सामने कई लोगों ने यह सवाल रख दिया था कि वह पूँजीपतियों के भ्रष्टाचार पर कोई सवाल नहीं उठाते। ऐसे में, अम्बानी ही केजरीवाल को सवाल उठाने के लिए सबसे मुफीद लगा, जिसका कारण हम ऊपर बता चुके हैं। लेकिन केजरीवाल की राजनीति समूची पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ़ नहीं खड़ी है, बल्कि एक भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद की बात करती है। ऐसे में, निश्चित तौर पर, केजरीवाल कोई विकल्प नहीं बन सकते हैं। इस बात का हम बस इन्तज़ार कर सकते हैं कि 2014 के चुनावों में केजरीवाल और उनकी वानर सेना का क्या होता है!

दूसरा सवाल यह है कि क्या केजरीवाल वाकई भ्रष्टाचार के सभी रूपों के ख़िलाफ़ हैं? अगर ग़ौर से देखें तो ऐसा लगता नहीं है। भ्रष्टाचार का भी एक वर्ग चरित्र होता है। भ्रष्टाचार के कुछ रूपों से टटपुंजिया और मध्यवर्ग को ही दिक्कत होती है। वास्तव में, मकान का नक्शा पास कराने के लिए विकास प्राधिकरण के कार्यालय में जो रिश्वत देनी पड़ती है, उससे मज़दूर को क्या फर्क पड़ता है? कुछ भी नहीं! वह दो वक्त की रोटी मुश्किल से जुटा पाता है, तो मकान कहाँ से बनवायेगा। उसकी तो सारी ज़िन्दगी अनियमित तौर पर बसायी गयी झुग्गियों में बीत जाती है। इसलिए विकास प्राधिकरण और म्युनिसिपैलिटी के बड़े बाबू के भ्रष्टाचार से मज़दूर बहुत पीड़ित नहीं होता। लेकिन केजरीवाल केवल इसी भ्रष्टाचार पर बोलते हैं, जिससे कि देश का मध्यवर्ग पीड़ित होता है। इसीलिए तो केजरीवाल ने अपनी पार्टी के घोषणापत्र में ही लिख रखा है कि आम आदमी पार्टी के नेता मध्यवर्गीय जीवन बिताएँगे! ख़ैर, जब केजरीवाल खुद ही अपने आपको और अपनी पार्टी को मध्यवर्गीय बता रहे हैं, तो हमें ज़्यादा कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं है। लेकिन भ्रष्टाचार के जिन रूपों का सबसे ज़्यादा असर मज़दूर वर्ग पर पड़ता है उस पर केजरीवाल साहब कुछ नहीं बोलते! देश में 260 श्रम कानून मौजूद हैं, लेकिन देश के 93 फीसदी मज़दूरों के लिए इन कानूनों का कोई मतलब नहीं है। सरकार भी जानती है कि इन कानूनों का पालन कहीं पर नहीं होता है और केजरीवाल भी जानते हैं। लेकिन इस पर केजरीवाल और उसकी वानर सेना कभी उछल-कूद नहीं मचाती है। जब से केजरीवाल और उसकी वानर सेना भ्रष्टाचार की लंका फतह करने के लिए मीडिया के मैदान में उतरी है, तब से देश में तमाम जुझारू मज़दूर आन्दोलन हो चुके हैं। ये सभी आन्दोलन जायज़ और कानूनी माँगों को लेकर किये जा रहे थे। इन आन्दोलनों को बर्बर दमन किया गया। मारूति सुजुकी के मज़दूर क्या माँग रहे थे? वे महज़ यूनियन बनाने का अधिकार माँग रहे थे जो कि उनका कानूनसम्मत और संविधान-प्रदत्त अधिकार है। लेकिन पूरे पूँजीपति वर्ग ने हरियाणा राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार के साथ मिलकर उनका दमन किया। पहले मारूति सुजुकी के कारखाने में सुनियोजित ढंग से हिंसा करायी गयी और उसके बाद मज़दूरों के ख़िलाफ़ पहले आतंकराज कायम किया गया, पुलिस हिरासत में गिरफ्तार मज़दूरों को बर्बर यातनाएँ दी गयीं और बाद में अच्छी-ख़ासी संख्या में उन्हें निकाल बाहर किया गया। लेकिन इस अन्याय के ख़िलाफ़ न तो अण्णा हज़ारे और उनके चेले-चपाटियों ने एक भी बयान देना ज़रूरी समझा और न ही अरविन्द केजरीवाल और उनकी वानर सेना ने इस पर चूँ तक की! क्यों? क्या मारूति सुजुकी द्वारा श्रम कानूनो का उल्लंघन भ्रष्टाचार नहीं है? भट्टा पारसौल के किसानों से जबरन ज़मीनें छीनने का प्रयास किया गया, उन पर लाठियाँ-गोलियाँ बरसायी गयीं, जो कि सीधे-सीधे सत्ता की तानाशाही थी और किसी भी कानून के ख़िलाफ़ था। यह भी तो भ्रष्टाचार था। तब अरविन्द केजरीवाल और उनकी वानर सेना कहाँ थी? जब दक्षिण भारत में यनाम के मज़दूरों का दमन किया जा रहा था जो कि अपनी जायज़ माँगों को लेकर लड़ रहे थे, तब अरविन्द केजरीवाल को भ्रष्टाचार की याद नहीं आयी। जब तिरुपुर के मज़दूर जीने के लिए बुनियादी ज़रूरतों के छीन लिये जाने के कारण आत्महत्याएँ कर रहे थे, तब अरविन्द केजरीवाल ग़ायब रहे। ऐसे मसलों की गिनती करने में दर्जनों पन्ने काले किये जा सकते हैं। लेकिन एक बात साफ़ है–अरविन्द केजरीवाल का भ्रष्टाचार-विरोधी तमाशा मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ हो रहे पूँजीवादी भ्रष्टाचार के प्रति षड्यन्त्रकारी चुप्पी ओढ़े हुए है। वह बस उस भ्रष्टाचार पर शोर मचाता है, जहाँ पूँजीपति वर्ग के ही दो हिस्सों के बीच मुनाफ़े/लूट के माल में हिस्सेदारी को लेकर मारामारी है–एक ओर मालिक वर्ग और उपभोक्ता वर्ग (यानी शहरी और ग्रामीण उच्च मध्य वर्ग) और दूसरी ओर नेता-नौकरशाह वर्ग! जिस भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ लड़ने की अरविन्द केजरीवाल बात कर रहे हैं, वह अव्वलन तो इस व्यवस्था के भीतर ख़त्म हो ही नहीं सकता, और अगर ख़त्म हो भी गया तो इससे देश की आम मेहनतकश आबादी को कुछ भी नहीं मिलेगा। इससे केवल दो वर्गों को लाभ होगा–पहला, देश का कारपोरेट मालिक वर्ग और दूसरा देश का खाता-पीता उच्च मध्य वर्ग। यही दोनों केजरीवाल के अभियान के सबसे महत्वपूर्ण समर्थक वर्ग हैं। इसके अतिरिक्त, निम्न मध्यवर्ग भी भ्रष्टाचारी पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ अपने गुस्से के कारण इस अभियान की भीड़ में शामिल हो जाता है। लेकिन यह उसकी छद्म चेतना के कारण होता है। उसे भी अरविन्द

(पेज 6 पर जारी)

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? (चौदहवीं किश्त)

मूलभूत अधिकार – लम्बे–चौड़े वायदों के पीछे की सच्चाई

आलोक रंजन

इस श्रृंखला के पिछले लेख में हमने देखा कि किस प्रकार संविधान में मौजूद संवैधानिक अधिकार एक समतामूलक समाज बनाने के लिहाज़ से और समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए मानवीय गरिमापूर्ण जीवन की दृष्टि से नाकाफ़ी हैं और जो अतिसीमित अधिकार संविधान द्वारा दिये भी गये हैं उनको भी छीनने के प्रावधान संविधान के भीतर ही मौजूद हैं। इस लेख में हम संविधान में उल्लिखित दो मूलभूत अधिकारों यानि समता का अधिकार और आज़ादी का अधिकार की विस्तृत चर्चा करेंगे।

समता का अधिकार(अनु. 14 से अनु. 18 तक)

अनु. 14 से लेकर अनु. 18 तक के प्रावधान समता के मूलभूत अधिकार से सम्बन्धित हैं। संविधान में क़ानून के राज्य और क़ानून के समक्ष समता की लोकलुभावन बातें इस नंगी सच्चाई के सामने बेमानी साबित हो जाती हैं कि हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं जो न सिर्फ़ ऐतिहासिक रूप से असमान रहा है बल्कि आज़ादी के बाद के पूँजीवादी विकास के दौर में सामाजिक और आर्थिक विषमता घटने की बजाय बढ़ी ही हैं। एक आँकड़े के मुताबिक देश की ऊपरी दस फ़ीसदी आबादी के पास देश की कुल परिसम्पत्ति का 85 फ़ीसदी है, जबकि नीचे की 60 फ़ीसदी आबादी के पास महज़ 2 फ़ीसदी है। एक ओर देश में अरबपतियों और करोड़पतियों की संख्या में इजाफ़ा हो रहा है वहीं दूसरी ओर ग़रीबी और भुखमरी भी बढ़ रही है।

ऐसे में अनु. 14 में उल्लेखित क़ानून के समक्ष समता और क़ानून के समान संरक्षण की बात एक भद्दे मज़ाक जैसी लगती है। असलियत यह है कि इस देश में सम्पत्तिवानों के लिए तो क़ानून बेहद लचीला है जिसकी वजह से वे हत्या, बलात्कार, फ़िरौती, लूटपाट जैसे संगीन अपराधों में लिप्त होने के बाद भी न सिर्फ़ खुले आम समाज में अपना डंका बजाते हैं बल्कि विधायक, संसद सदस्य और मंत्री तक बन जाते हैं। वहीं दूसरी ओर सम्पत्तिविहीनों के लिए क़ानून फ़ौलाद सरीखा है और इसकी चपेट में ग़लती से भी या मामूली अपराध करने की वजह से आने के बाद वे सालों-साल जेलों में सड़ते रहते हैं क्योंकि उन्हें न तो क़ानूनीप्रक्रिया के बारे में जागरूकता होती है और न ही इस बेहद ख़र्चीली प्रक्रिया को वहन करने की कुव्वत। यानि अमीरों के लिए क़ानून का एक रूप और ग़रीबों के लिए दूसरा रूप!

अनु.15 में धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव करने पर निषेध की बात कही गई है। अनु. 16 में इन्हीं आधारों पर सरकारी नौकरियों में भी भेदभाव को निषेध करने का प्रावधान है। परन्तु इस देश की हक़ीकत इन प्रावधानों से कितनी जुदा है इस बात का अन्दाज़ा आये दिन दलितों, महिलाओं, प्रवासी मज़दूरों, कश्मीर और उत्तर-पूर्व जैसे परिधि की राष्ट्रीयताओं के लोगों के साथ हिंसक और अपमानजनक वारदातों से लगाया जा सकता है। वोट बैंक और सस्ती लोकरंजकता पर आधारित बुर्जुआ राजनीति व्यवहार में हर पल अपने ही द्वारा बनाये गये संविधान के प्रावधानों की धज्जियाँ उड़ाती दिखती है।

अनु.15 में ही एक और प्रावधान यह है कि राज्य शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रयोजन कर सकता है। यहाँ ग़ौर करने वाली बात यह है कि इस प्रावधान में आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों का कोई ज़िक्र नहीं है। संविधान निर्माता इस बात से अच्छी तरह वाकिफ़ थे कि वे जिस पूँजीवादी समाज की नींव रख रहे थे उसमें हमेशा ही बहुसंख्यक आबादी आर्थिक रूप से पिछड़ी ही रहेगी। ऐसे में आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रयोजन संविधान में डालना उदीयमान बुर्जुआ वर्ग को हरगिज़ मंजूर नहीं होता। इसलिए उन्होंने इस मसले पर मौन रहना ही उचित समझा। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़ी जातियों के लिए संरक्षण देना इसलिए ज़रूरी था कि यदि इन जातियों के अगुआ तत्वों को कुछ रियायतों का लालच देकर सदियों से चली आ रही जाति-व्यवस्था के अमानवीय भेदभाव के ख़िलाफ़ सुलग रही विद्रोह की लपट पर ठंडे पानी के छींटे न फेंके जाते तो पूँजीवादी व्यवस्था के ऊपर अस्तित्व का संकट आ जाता। यदि विद्रोह की ये लपटें मज़दूर संघर्षों की मशाल से जा मिलतीं तो पूँजीवादी आधार पर समाज को चलाना बेहद मुश्किल हो जाता। आज भी आरक्षण की जातिगत राजनीति का मक़सद निचली जातियों के मन में बेहतरी की एक झूठी उम्मीद जगाना है क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था सबके लिए रोज़गार दे ही नहीं सकती। आरक्षण की मौजूदा बुर्जुआ राजनीति के रहनुमा जाति प्रथा और मनुवादी ब्राहमणवाद के ख़िलाफ़ चाहे जितनी गर्मा गर्म बातें कहें, उनकी राजनीति जाति प्रथा की जड़ों को काटने की बजाय उसको और मजबूत बनाती है। इस प्रकार बुर्जुआ राजनीति ने खुद ही संविधान में मौजूद अस्पृश्यता उन्मूलन (अनु. 17) और जातिगत भेदभाव रोकने के प्रावधानों को बेमानी साबित कर दिया है। इस सच्चाई की एक मिसाल यह है कि संविधान लागू होने के छह दशकों बाद भीइस देश में अन्तरजातीय विवाह नियम की बजाय अपवाद है। समय बीतने के साथ भले ही जातिगत उत्पीड़न के कुछ पुराने भोंडे रूप सामने न आते हों परन्तु जातिगत उत्पीड़न के नये नये रूप सामने आ रहे हैं जो दिल दहला देने वाले हैं।

संविधान के अनु.18 में उपाधियों के अन्त का प्रावधान है और इसमें राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह सेना या विद्या सम्बन्धी सम्मान के सिवाय और कोई उपाधि नहीं प्रदान करेगा। इस सांकेतिक ज़िम्मेदारी को निभाने में भी भारत की पूँजीवादी राजनीति सफ़ल नहीं हो पायी है। हर साल सरकार अपने चहेते बुद्धिजीवियों, कलाकारों, उद्योगपतियों और मीडियाकर्मियों को पद्म विभूषण, पद्म भूषण और पद्म श्री जैसे ख़िताबों से नवाजती है और इनको पाने की होड़ औपनिवेशिक काल के राय बहादुर और खान बहादुर जैसी उपाधियों के लिए होड़ की याद दिलाती है।

स्वतन्त्रता सम्बन्धित अधिकार (अनु.19 से अनु. 22 तक)

संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक स्वतन्त्रता सम्बन्धित अधिकारों के प्रावधान हैं। भारतीय संविधान के उत्साही समर्थक और बुर्जुआ बुद्धिजीवी इन प्रावधानों का बखान करते नहीं अघाते। सतही तौर पर देखने से ये प्रावधान जनता को स्वतन्त्रता सम्बन्धित तमाम अधिकार देते हुए प्रतीत भी होते हैं। परन्तु जैसे ही हम इन प्रावधानों की तफ़्सीलों में जाते हैं, हम पाते हैं कि दरअसल ये जनता को प्रदत्त अधिकार कम और राज्य द्वारा जनता के अधिकारों का हनन करने के अस्त्र ज़्यादा हैं।

मिसाल के तौर पर अनु. 19 को ही लें जो बोलने और अभिव्यक्ति की आज़ादी (19(1)(क)), शान्तिपूर्वक और बिना हथियार के सभा करने की आज़ादी(19(1)(ख)), संघ या यूनियन बनाने की आज़ादी (19(1)(ग)), भारत के राज्यक्षेत्र में कहीं भी बेरोकटोक आवाजाही की आज़ादी (19(1)(घ)), भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भी भाग में निवास करने और बस जाने की आज़ादी (19(1)(ङ)), कोई भी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की आज़ादी (19(1)(छ))का वायदा करता है। परन्तु जैसे ही हम अनु. 19 में ही मौजूद अन्य खण्डों पर निगाह दौड़ाते हैं, इन वायदों की क़लई खुल जाती है। इन खण्डों में 'वाजिब पाबन्दियों (Reasonable restrictions)' के प्रावधान हैं जो राज्य को यह अधिकार देते हैं कि वह भारत की प्रभुता और अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हित में अथवा न्यायालय की अवमानना के सम्बन्ध में क़ानून बनाकर इन अधिकारों पर वाजिब पाबन्दियाँ लगा सकता है। 'वाजिब पाबन्दियों' के इन्हीं प्रावधानों का जमकर लाभ उठाते हुए पिछले छह दशकों में भारतीय राज्य ने नागरिकों के बेहद बुनियादी जनवादी अधिकारों का धड़ल्ले से हनन किया है।

इस देश के लोगों को बोलने की आज़ादी तब तक है जब तक वो राज्य की सुरक्षा और देश की प्रभुता और अखण्डता के दायरे के भीतर बात करते हैं। ज्यों ही कोई मौजूदा व्यवस्था का आमूलचूल परिवर्तन करके वास्तविक जनवाद और समता पर आधारित एक वैकल्पिक व्यवस्था के निर्माण के बारे में बोलता है, या फिर कश्मीर और उत्तर पूर्व के राज्यों के लोगों के आत्मनिर्णय के अधिकार के पक्ष में बोलता है, राज्य सत्ता के कान खड़े हो जाते हैं और उस व्यक्ति के बोलने की आज़ादी पर वाजिब पाबन्दियों के लिए संविधान का सहारा लेकर उसकी ज़बान ख़ामोश करने की क़वायद शुरू हो जाती है।

भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र कहकर इसकी शान में क़सीदे पढ़ने वाले लोग अक्सर भारत में प्रेस और मीडिया की आज़ादी का हवाला देते हैं और इसको संविधान के अनु. 19 (1)(क) में मौजूद अभिव्यक्ति की आज़ादी से जोड़ते हैं। परन्तु भारतीय प्रेस और मीडिया के स्वरूप से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दरअसल यह आज़ादी प्रेस और मीडिया के व्यवसाय की आज़ादी है। देश के लगभग सभी बड़े अख़बार और टेलीविज़न चैनलों का मालिकाना हक़ कॉरपोरेट घरानों के पास है। यही नहीं औद्योगिक घराने विज्ञापनों के ज़रिये अख़बारों और टी वी चैनलों पर नियन्त्रण स्थापित करते हैं। पिछले कुछ सालों में पेड-न्यूज़ जैसी परिघटनाओं के सामने आने से और राडिया टेप काण्ड के बाद भी जब कोई भारत में मुक्त प्रेस और आज़ाद मीडिया की बात करता है तो हँसी आती है।

आइये अब देश में कहीं भी शान्तिपूर्ण और हथियारों के बिना सभा करने की आज़ादी के अधिकार की असलियत समझें। देश की राजधानी दिल्ली में आलम यह है कि जन्तर-मन्तर के अतिरिक्त सभी स्थानों पर धारा 144 हमेशा लगी रहती है जिसके तहत 5 या उससे अधिक लोग एक जगह एकत्र नहीं हो सकते। यानि जन्तर-मन्तर के अलावा और कहीं भी कोई सभा नहीं हो सकती है और जन्तर मन्तर में भी सभा करने के लिए पुलिस की अनुमति लेनी पड़ती है। इस तथ्य की रोशनी में जब हम ऊपर लिखे गये संवैधानिक अधिकार को पढ़ते हैं तो हम अपने आप को ठगा हुआ सा पाते हैं। कमोबेश ऐसा ही भाव संघ या यूनियन बनाने के संवैधानिक अधिकार और ज़मीनी हक़ीकत के बीच की खाई को देखकर पैदा होता है। अभी हालिया मारुती आन्दोलन पर सरसरी निगाह डालने से यह खाई साफ़ नज़र आती है क्योंकि मारुती के मज़दूरों की मुख्य माँग अपनी स्वतन्त्र यूनियन बनाने की थी जिसको एक साज़िशाना अन्दाज़ में दबा दिया गया। जहाँ तक देश में कहीं भी बेरोकटोक आवाजाही और कहीं भी निवास करने और बसने के अधिकार का सवाल है, अलग-अलग राज्यों में क्षेत्रीय अन्धराष्ट्रवादी ताकतों के उभार के दौर में ये वैसे भी सीमित हो जाते हैं और देश में कहीं भी जाने और क़ानूनन बसने के लिए ज़रूरी आर्थिक संसाधन एक छोटी आबादी के पास ही उपलब्ध होती है। ग़रीबों की अधिकांश आबादी महानगरों में अवैध कालोनियों और झुग्गी-झोपड़ियों में रहने पर मज़बूर होती है जिन पर हमेशा प्रशासन के क़हर का ख़तरा मंडराता रहता है। यही बात अपना व्यवसाय चुनने की आज़ादी पर लागू होती है। बड़े उद्योगपतियों और अति शिक्षित प्रोफ़ेशनलों के लिए तो व्यवसाय चुनने की आज़ादी है परन्तु आर्थिक तंगी और अशिक्षा के मद्देनज़र ग़रीबों और कमज़ोर तबके की आबादी के लिए इस आज़ादी का कोई मतलब नहीं रह जाता है। उनके लिए व्यवसाय चुनने की आज़ादी का मतलब सिर्फ़ यह रह जाता है कि वे कमरतोड़ मेहनत करने वाली मज़दूरी करें, रिक्शा चलायें या ठेला और खोमचा लगाकर कोई चीज़ बेचें। तिस पर भी पुलिस का डण्डा हमेशा उनके सिर पर सवार रहता है जिससे बचने के लिए उन्हें चोर उचक्कों की तरह यहाँ वहाँ भटकना पड़ता है और अपने संवैधानिक अधिकारों के लिए भी घूस देना पड़ता है।

ज्ञात हो कि 1978 तक संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) और अनुच्छेद 31 के तहत सम्पत्ति का अधिकार मूलभूत अधिकार था।

(पेज 8 से आगे)

इन प्रावधानों के अनुसार राज्य द्वारा किसी की सम्पत्ति अधिग्रहित करने की सूरत में पर्याप्त हरज़ाने का प्रावधान था। इन्हीं प्रावधानों के तहत जमींदारी उन्मूलन के समय पूर्व जमींदारों को मोटी रक़म उस सम्पत्ति के हरजाने के तौर में मिली जो जमींदारों की कई पुश्तों ने किसानों का खून निचोड़ कर अर्जित की थी। जब इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया, निजी एयरलाइंसों और बदहाल औद्योगिक इकाइयों का राष्ट्रीयकरण किया गया तो इनके देशी और विदेशी शेयर होल्डरों को ज़रूरत से कहीं ज़्यादा हरज़ाना दिया गया। इन्हीं प्रावधानों के तहत केन्द्र सरकार ने पूर्व राजे रजवाड़ों और उनकी अगली पीढ़ियों तक को कर रहित प्रिवी पर्सेज़ दिये, उनके महलों, जागीरों और बेशकीमती हीरे जवाहरात पर उनका मालिकाना हक़ बरकरार रखा गया। यही नहीं उनके ऊपर कोई मुकदमा चलाने के लिए केन्द्र सरकार की मंजूरी ज़रूरी थी। इसके अतिरिक्त उन राजे रजवाड़ों और उनकी सन्तानों को केन्द्र और राज्य सरकारों में मन्त्री और विदेशों में राजदूत नियुक्त किया गया। इनमें से कई आज भी अलग-अलग पार्टियों के कद्दावर नेता माने जाते हैं और कई बड़े उद्योगपति और आलीशान होटलों के मालिक हैं। हालाँकि 1978 में संविधान के 44 वें संशोधन द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मूलभूत अधिकार के दर्जे से हटा दिया गया, परन्तु अब भी यह संविधान के अनुच्छेद 300 (क) के तहत एक कानूनी अधिकार है। यही नहीं आम तौर पर उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय ने अन्य मूलभूत अधिकारों की व्याख्या सम्पत्ति के अधिकार की रक्षा करने के अन्तर्गत ही की है।

संविधान के अनुच्छेद 20 में अपराधों के लिए दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण का प्रावधान है। इसमें इस बात का प्रावधान है कि बिना किसी क़ानून के उल्लंघन के किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, दण्ड अपराध के अनुसार ही होना चाहिए, किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक दण्डित नहीं किया जाएगा और किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। परन्तु भारतीय न्यायिक व्यवस्था की थोड़ी भी समझ रखने वाला व्यक्ति यह अच्छी तरह जानता है कि वास्तव में न्याय की प्रक्रिया लोगों के सामाजिक और आर्थिक रुतबे के अनुसार काम करती है। रईसजादों के अपराधों के निए अव्वलन तो उन्हें कोई दण्ड नहीं मिलता और अगर अपवादस्वरूप किसी मामले में मिलता भी है तो वह उनके अपराधों की अपेक्षा बेहद कम होता है। ग़रीबों के साथ न्यायिक व्यवस्था ठीक इसके उलट व्यवहार करती है। छोटे-छोटे अपराधों के लिए ग़रीब सालों साल जेलों में सड़ते रहते हैं और कई मामलों में तो आर्थिक तंगी की वजह से वे जमानत पर भी नहीं छूट पाते हैं। इसके अतिरिक्त उनसे अपराध कबूल करवाने के लिए पुलिस बर्बर प्रताड़ना के तरीके अपनाती है जो अनुच्छेद 20 के प्रावधानों को घटिया मज़ाक जैसा बना देते हैं।

संविधान का अनुच्छेद 21 जीने और निजी आज़ादी के संरक्षण का दावा करता है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या निजी आज़ादी से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। इस दावे का खोखलापन इस प्रावधान में ही दिखता है। इससे यह बात साफ़ उभर कर आती है कि राज्य को यह अधिकार है कि वह कानून बनाकर किसी व्यक्ति के प्राण या निजी आज़ादी से वंचित कर सकती है। यदि राज्य स्वेच्छाचारी तरीके से कोई निरंकुश क़ानून बनाकर लोगों के जीने के अधिकार और निजी आज़ादी के अधिकार से वंचित कर दे तो यह बिल्कुल संविधान सम्मत है। आगे हम देखेंगे कि किस प्रकार पिछले छह दशकों में भारतीय राज्य ने तमाम काले कानूनों के ज़रिये लोगों के जीने के अधिकार और निजी आज़ादी के अधिकार का अपवादस्वरूप नहीं बल्कि धड़ल्ले से अपहरण किया है। इसके अतिरिक्त हम यह पहले भी देख चुके हैं कि चूँकि भारतीय संविधान नागरिकों को एक गरिमापूर्ण मानवीय जीवन जीने के लिए ज़रूरी बुनियादी ज़रूरतों की भी गारण्टी नहीं देता इसलिए अनुच्छेद 21 में उल्लिखित जीने और निज़ी आज़ादी का अधिकार महज़ एक क़ागज़ी अधिकार बनकर रह जाता है।

मूल संविधान में मूलभूत अधिकारों सम्बन्धित भाग 3 में शिक्षा के अधिकार का कोई ज़िक्र नहीं था। संविधान लागू होने के आधी सदी बाद 2002 में 86 वें संशोधन के ज़रिये अनुच्छेद 21 क जोड़ा गया जो शिक्षा के मूलभूत अधिकार को मूलभूत अधिकार घोषित करता है। यानि जो अधिकार किसी भी स्वतन्त्र देश में सबसे पहले मिलना चाहिए था उसको देने में भारतीय शासक वर्ग को 50 वर्षों से भी ज़्यादा का वक़्त लग गया। यही नहीं अनुच्छेद 21 क के प्रावधान पढ़ने से यह बात साफ़ हो जाती है कि यह अधिकार आधे अधूरे मन से दिया गया है। इसमें सिर्फ़ 6 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा की ज़िम्मेदारी राज्य को दी गई है। यानि छह वर्ष से कम और 14 वर्ष से अधिक बच्चों की शिक्षा की ज़रूरत संविधान लागू होने के आधी सदी बाद भी महसूस नहीं की गई। यही नहीं इस प्रावधान में सबके लिए समान शिक्षा और शिक्षा की गुणवत्ता से सम्बन्धित कोई बात नहीं कही गई है। ग़रीबों के बच्चे अगर किसी तरह ख़स्ताहाल सरकारी स्कूलों में पहुँच भी पाते हैं तो उनकी शिक्षा की गुणवत्ता मध्यवर्ग या उच्च वर्ग के बच्चों के मुकाबले बेहद निचले स्तर की होती है। ऐसे में संविधान के संशोधन के दौरान इस पहलू पर कोई ध्यान न देना भारतीय बुर्जुआ वर्ग के घोर जनविरोधी चरित्र की ही एक बानगी है।

अन्त में आइये हम अनुच्छेद 22 में मौजूद प्रावधानों पर निगाह डालते हैं जिनके तहत कुछ दशाओं में गिरफ़्तारी और निरोध से संरक्षण का दावा किया गया है। लेकिन हास्यास्पद तथ्य यह है कि इसी अनुच्छेद में राज्य को निरोधक नज़रबन्दी (preventive detention) सम्बन्धित क़ानून बनाने के लिए संवैधानिक मंजूरी भी दी गई है। इसी संवैधानिक मंजूरी का जमकर लाभ उठाते हुउ संसद और राज्य विधायिकाओं ने पिछले छह दशकों के दौरान तमाम काले क़ानूनों की झड़ी लगाई है जिनका इस्तेमाल राज्यसत्ता द्वारा बड़े पैमाने पर नागरिक और जनवादी अधिकारों के हनन करने के अलावा जनान्दोलनों का दमन करने में भी किया गया। अभी मूल संविधान की स्याही भी नहीं सूखी थी जब संसद ने निरोधक नज़रबन्दी क़ानून 1950 (Preventive Detention Act 1950)को पारित किया जो 1969 तक प्रभावी रहा। इसके पश्चात 1971 में 'मीसा' लाया गया जो 1975 से 1977 तक प्रभावी कुख़्यात आपातकाल के दौरान राज्य की नग्न तानाशाही का पर्याय बन गया। 1980 में राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (National Security Act) लाया गया जो आज भी अस्तित्व में है। 1985 में 'टाडा' (Terrorism and Disruptive Activities Act) लाया गया जिसका आतंकवाद से लड़ने के नाम पर जमकर दुरुपयोग हुआ। वर्ष 2002 में तत्कालीन राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन की सरकार ने आतंकवाद से लड़ने के लिए अपनी प्रतिबद्धता दिखाने के लिए खूंखार पोटा (Prevention of Terrorism Act)पारित किया जिसका दुरुपयोग होना ही था और वही हुआ। वर्ष 2004 में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार ने अपनी प्रगतिशील छवि दिखाने के लिए पोटा को निरस्त किया, परन्तु बड़ी ही चालाकी से उसके काले प्रावधान गैरकानूनी गतिविधियाँ निवारक अधिनियम (Unlawful Activities (Prevention) Act)में डाल दिये। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में भी इस किस्म के काले क़ानूनों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त है जैसे कि महाराष्ट्र में 'मकोका' और छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ विशेष सुरक्षा अधिनियम!

इस प्रकार हम पाते हैं कि संविधान ने नागरिकों को जो अतिसीमित अधिकार प्रदान भी किये हैं उनके अपहरण के प्रावधान भी संविधान में ही मौजूद हैं। अगले अंक में हम अन्य मूलभूत अधिकारों यानि शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार और संवैधानिक उपचारों के अधिकार की विस्तृत चर्चा करेंगे।

बाल ठाकरे : भारतीय फ़ासीवाद का प्रतीक पुरुष

(पेज 16 से आगे)

बाल ठाकरे ने अपने जीवनकाल में कई बार हिटलर और नाथूराम गोडसे जैसे फ़ासिस्टों की सार्वजनिक रूप से प्रशंसा की। ठाकरे ने कई बार आपातकाल की मुक्तकंठ से प्रशंसा की और उनका यह बयान अक्सर मीडिया में आता था कि यदि उनके हाथ देश की कमान दे दी जाये तो वे मिलिटरी की मदद से एक महीने में पूरा देश को सुधार देंगे।

मुम्बई में शिव सेना के आतंक का सामना न सिर्फ़ गैर मराठियों और मुस्लिमों को करना पड़ा, बल्कि तमाम पत्रकार और बुद्धिजीवी भी इस फ़ासिस्ट सेना के आतंक की चपेट में आये। मुम्बई में जिस किसी अखबार या टी वी चैनल ने बाल ठाकरे या शिव सेना की शान में गुस्ताख़ी की उसे सेना के गुण्डों के कोपभाजन का शिकार बनना पड़ा। शिव सेना के गुण्डों ने परंपराओं पर चोट करते हुए तमाम प्रगतिशील नाटकों और फ़िल्मों पर हमला किया। विजय तेंदुलकर के प्रसिद्ध नाटक सखाराम बिन्दर और घासीराम कोतवाल, गोविन्द निहलानी का मशहूर टी वी सीरियल तमस, दीपा मेहता की फिल्म फायर इसकी बानगी भर हैं। इनके अतिरिक्त हर साल वैलेन्टाइंस डे के दिन हर साल शिव सेना के गुण्डों की काली करतूतों से भला कौन नहीं वाकिफ़ होगा।

बाल ठाकरे की मृत्यु के बाद कुछ लोगों ने ऐसे विचार प्रकट किये कि शायद अब भारत में फ़ासीवाद की राजनीति कमज़ोर पड़ेगी। परन्तु सच्चाई यह है कि फ़ासीवाद किसी एक व्यक्ति की सोच से नहीं पैदा होता है बल्कि यह संकटग्रस्त पूँजीवादी व्यवस्था का ही एक उत्पाद है और जब तक इस व्यवस्था का कोई क्रान्तिकारी विकल्प सामने नहीं आयेगा तब तक फ़ासीवाद अपने तमाम रूपों में अस्तित्वमान रहेगा। बाल ठाकरे जैसे व्यक्तित्व फ़ासीवाद के वाहक मात्र होते हैं और उनके जाने के बाद भी पूँजीवाद अपनी स्वाभाविक गति से नये फ़ासीवादी व्यक्तित्वों का निर्माण करता रहेगा, यदि क्रान्तिकारी ताकतें अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में क़ामयाब नहीं होती हैं। यही नहीं कुंठा का शिकार जनता का एक हिस्सा भी ऐसे फ़ासिस्टों में नायकों की तलाश करता रहेगा। इसलिए ऐसे दानवों को फलने फूलने से रोकने का बस एक तरीका है और वह है मेहनतकशों को जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रों की सीमाओं को तोड़कर वर्गीय आधार पर एकजुट, लामबंद और संगठित करना।

आनन्द सिंह

("आह्वान" से

साथियो! इस अंक में हम 'पेरिस कम्यूनः पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा' की आठवीं किश्त कुछ अपरिहार्य कारणों से प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं। हम इसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं। अगले अंक से इस सचित्र कथा को नियमित तौर पर प्रकाशित करेंगे। - सम्पादक

ब्रांडेड कपड़ों के उत्पादन में लगे मज़दूर...

(पेज 3 से आगे)

कम्पनियों में काम कर चुके कई मजदूर बताते हैं कि कुछ साल पहले जिन कम्पनियों में स्थाई मजदूर रखे जाते थे उन सभी कम्पनियों ने लगातार छटनी करते हुये आज ज्यादातर मजदूरों को ठेके पर कर दिया है। कपड़ा उद्योगो में काम में लगे मजदूरों के शोषण के यह हालात सिर्फ़ भारत में ही नहीं हैं, बल्कि बड़ी-बड़ी देशी-विदेशी कम्पनियाँ पूरी दुनिया में सस्ते श्रम और सस्ते कच्चे माल की तलाश में ज्यादा अतिरिक्त मुनाफा कमाने की होड़ में लगी हैं। इसका एक उदाहरण अभी हाल ही में बंग्लादेश के ढाका शहर में एक कपड़ा फैक्टरी में घटी घटना है जहाँ आग लगने से 110 मजदूरों की मौत की हो गई थी, जिसका कारण मजदूरों की सुरक्षा के कोई इन्तजाम न होना था। इस फैक्टरी में वाल-मार्ट के लिये कपड़े बनाये जाते थे।

इन तथ्यो की रोशनी में पर देखने पर स्पष्ट स्थिति इस तरह सामने आते हैं कि इस पूरे क्षेत्र में कपड़ा उद्योग में ज्यादातर मजदूर ठेके पर काम कर रहे हैं, सभी मजदूर घोर शोषण के शिकार है और उन सभी की काम और जीवन की स्थिति लगभग एक समान हैं, और उनकी मांगें भी एक समान हैं। इन मजदूरों के बीच लगातार प्रचार-प्रसार कर उन्हें उनकी माँगों के इर्द-गिर्द गोलबंद करते हुये क्षेत्रीय स्तर पर उनके ट्रेड के आधाार पर एक क्रांतिकारी नेतृत्व में संगठित किया जा सकता है, जो पूरी व्यवस्था के वर्ग चरित्र को और स्पष्ट रूप में उनके सामने लाने में मदद करेगा और भविष्य के बड़े आन्दोलनों के लिये उन्हें शिक्षित करने का काम करेगा।

– राजकुमार

क्रान्तिकारी चीन ने प्रदूषण की समस्या का मुक़ाबला कैसे किया
और चीन के वर्तमान पूँजीवादी शासक किस तरह पर्यावरण को बरबाद कर रहे हैं!

प्रस्तुत लेख इस बात पर रोशनी डालता है कि समाजवादी चीनी जनता ने किसी प्रकार प्रदूषण और औद्योगिक कचरे का सफलतापूर्वक मुक़ाबला किया। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि इस लेख से पता चलता है कि यह काम ऐसे समाज के निर्माण के एक अंग के रूप में किया गया जिसका लक्ष्य हर प्रकार की वर्ग असमानताओं, उत्पीड़क सम्बन्धों और विचारों से छुटकारा पाना था। महत्वपूर्ण बात यह है कि जनसमुदाय इन समस्याओं को हल करने के क्रान्तिकारी मार्ग तक पहुँच और खाका बनाने में लगा था और यह सब वर्ग संघर्ष और समाजवाद के निर्माण के एक अंग के रूप में समाज में मौजूद उन ताक़तों से जूझते हुए किया गया जो चीन को पूँजीवादी रास्ते पर धकेलना चाहती थीं। इसने दिखा दिया कि प्रदूषण और पर्यावरण के विनाश का कारण पूँजीवादी उद्योग है न कि अपने आप में उद्योग। – सम्पादक

आज पूरी दुनिया में पर्यावरण बचाओ की चीख़-पुकार मची हुई है। कभी पर्यावरण की चिन्ता में दुबले हुए जा रहे राष्ट्राध्यक्ष, तो कभी सरकार की बेरुख़ी से नाराज़ एनजीओ आलीशान होटलों के एसी कमरों-सभागारों में मिल-बैठकर पर्यावरण को हो रहे नुक़सान को नियन्त्रित करने के उपाय खोजते फिर रहे हैं। लेकिन पर्यावरण के बर्बाद होने के मूल कारणों की कहीं कोई चर्चा नहीं होती। न ही चर्चा होती है उस दौर की जब जनता ने औद्योगिक विकास के साथ शुरू हुई इस समस्या को नियन्त्रित करने के लिए शानदार क़दम उठाए। जी हाँ, जनता ने! इसका एक उदाहरण क्रान्तिकारी चीन है, जहाँ 1949 की नव-जनवादी क्रान्ति के बाद कॉमरेड माओ के नेतृत्व में चीनी जनता ने इस मिथक को तोड़ने के प्रयास किए कि औद्योगिक विकास होगा तो पर्यावरण को नुकसान पहुँचेगा ही।

लेकिन समाजवादी दौर के चीन की उन उपलब्धियों पर चर्चा करने से पहले बेहतर होगा कि ''बाजार समाजवाद'' के नाम पर पूँजीवादी नीतियों पर चल रहे चीन में पर्यावरण की दुर्दशा पर नज़र डाल ली जाये।

पूँजीवादी "सुधारों" ने किया पर्यावरण को बर्बाद

तीस वर्षों के "सुधार" ने चीन के पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट कर डाला है। चीन में सीमित प्राकृतिक संसाधन और बेहद कम खेती योग्य जमीन है। ऐसे में चीन में किसी भी तरह का दीर्घकालिक विकास प्राकृतिक संसाधनों और खेती योग्य जमीन के संरक्षण पर ही आधारित हो सकता है। लेकिन तीस वर्षों के पूँजीवादी सुधारों में देश के लिए ज़रूरी नीतियों से उलट नीतियों पर अमल किया गया।

चीन में विश्व की खेती योग्य ज़मीन का केवल 9 प्रतिशत है, जबकि उसे दुनिया की 22 प्रतिशत आबादी को भोजन उपलब्ध कराना होता है। सुधारों के आरम्भ से अब तक कृषि भूमि को औद्योगिक और व्यापारिक इस्तेमाल के लिए देने और किसानों द्वारा खेती नहीं करने के कारण खेती योग्य ज़मीन में काफ़ी कमी आयी है।

इसके अलावा, चीन में प्रति व्यक्ति केवल 2,000 क्यूबिक मीटर पानी ही उपलब्ध है, जोकि पूरी दुनिया में उपलब्ध औसत पानी का एक चौथाई है। औद्योगिक उत्पादन और शहरीकरण की ऊँची दर के कारण पानी की खपत बढ़ गयी है, जिससे सिंचाई और ग्रामीण आबादी को बेहद कम पानी मयस्सर होता है। चीन के जल संसाधन मन्त्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार, चीन की कुल 114,000 किलोमीटर की लम्बाई वाली नदियों में से 28.9 प्रतिशत का पानी ही अच्छी गुणवत्ता वाला है और 29.8 प्रतिशत पानी की गुणवत्ता ख़राब है। 16.1 प्रतिशत पानी मनुष्यों के छूने लायक भी नहीं है और नदियों का शेष 25.2 प्रतिशत पानी इतना प्रदूषित हो चुका है कि उसे किसी काम में नहीं लाया जा सकता।

प्रदूषण का आलम यह है कि 1990 के दशक के अन्त में, क्षेत्र के 17 करोड़ लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने वाली पीली नदी 226 दिनों तक सूखी रही। नदियाँ ही नहीं, बल्कि चीन में भूमिगत जल भी तेज़ी से कम हो रहा है। जल संसाधन मन्त्रालय के ही अनुसार, भूमिगत जल के तेज़ी से घटते स्तर ने भूकम्पों और भूस्खलनों के ख़तरे तथा ज़मीन के बंजर होने की समस्या को और बढ़ा दिया है। जल और भूमि प्रदूषण ग्रामीण आबादी के लिए घातक साबित हो रहा है; कुछ गाँवों में, कैंसर की दर राष्ट्रीय औसत से 20 या 30 प्रतिशत अधिक है। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग और चीन के पर्यावरण की तबाही निर्यात को बढ़ाकर जीडीपी की उच्च दर को क़ायम रखने की अन्धाधुन्ध रणनीति का सीधा परिणाम है।

जल प्रदूषण के साथ ही, वायु और भूमि प्रदूषण की समस्या भी बहुत गम्भीर हो चुकी है। दुनिया के 20 सबसे ज़्यादा प्रदूषित शहरों में से 16 शहर चीन के हैं। वायु प्रदूषण से शहरवासियों को साँस की गम्भीर बीमारियाँ हो रही हैं। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन ओईसीडी के एक अध्ययन के अनुसार चीन में 300 मिलियन लोग प्रतिदिन दूषित पानी पीते हैं, और 190 मिलियन लोग दूषित जल के कारण होने वाले रोगों से पीड़ित हैं। यही नहीं इस अध्ययन के अनुसार यदि जल्दी ही चीन में वायु प्रदूषण की समस्या को नियन्त्रित नहीं किया गया तो आने वाले 13 वर्षों में सांस सम्बन्धी बीमारियों से चीन के 600,000 लोगों की समय से पहले मौत हो जायेगी, जबकि 2 करोड़ लोग इन बीमारियों से पीड़ित होंगे।

क्रान्तिकारी चीन की जनता ने निकाला प्रदूषण की समस्या का हल

संशोधनवादियों की अगुवाई में चल रही पूँजीवादी नीतियों का पर्यावरण पर पड़ने वाला प्रभाव अब चीन की जनता के साथ ही साथ पूरी दुनिया के भी सामने है। अब ज़रा इस पर नज़र डाली जाए कि समाजवादी निर्माण (1976 में माओ के देहांत से पहले) के दौर में चीन की जनता ने पर्यावरण की समस्या का सामना कैसे किया।

1960 के दशक के अन्त में क्रान्तिकारी चीन में त्सित्सिहार दस लाख जनसंख्या वाला एक शहर था। ननचियांग नदी से प्राप्त होने वाली मछली पूरे प्रान्त की पैदावार के आधे के बराबर थी। लेकिन नदी में पायी जाने वाली मछलियों की संख्या दिन-ब-दिन काफ़ी कम होती जा रही थी। जाड़ों में जब नदी जम जाती थी तो बड़ी संख्या में मछलियाँ मर जाती थीं और वर्ष 1960 के मुक़ाबले में अब प्रतिवर्ष सिर्फ़ 12 प्रतिशत मछलियाँ पकड़ी जाने लगीं। ये मछलियाँ इसलिए मर रही थीं क्योंकि उद्योग प्रतिदिन रसायन युक्त 250,000 टन दूषित पदार्थ और कचरा नदी में प्रवाहित कर रहे थे।

1968 में त्सित्सिहार पार्टी कमेटी और शहर की क्रान्तिकारी कमेटी ने इस समस्या को हल करने का निश्चय किया। चौदह शोध संस्थानों से चालीस से अधिक वैज्ञानिकों एवं तकनीशियनों को त्सित्सिहार आने और स्थानीय मज़दूरों, मछुआरों व तकनीशियनों के साथ मिलकर काम करने, तथा नदी का सर्वेक्षण करने के लिए लामबन्द किया गया। उन्होंने पाया कि दिसम्बर से अप्रैल के मध्य तक, जब नदी जमी रहती थी, नदी की तलहटी में एक पीला चिपचिपा पदार्थ जम जाता था, जिससे पानी से एक भयानक दुर्गन्ध निकलती थी। नदी में एक प्रकार की फफून्द और कुछ कार्बनिक पदार्थ जमा होते जा रहे थे क्योंकि उसमें भारी मात्रा में गन्दा पानी और रसायन फेंके जाते थे। इन अवशिष्ट रसायनिक पदार्थों से युक्त जल सामान्य जल की तुलना में 22.5 गुना अधिक ऑक्सीजन सोख लेता था और यही वह कारण था जिससे मछलियाँ मर रही थीं।

मज़दूरों, पार्टी की क़तारों और वैज्ञानिकों की एक टीम को इस समस्या से निपटने के काम में लगाया गया। उन्होंने सबसे पहले आम लोगों के बीच जाकर, उनके विचारों को जाना और यह भी जानकारी ली कि समस्या से निपटने के बारे में वे क्या सोचते हैं। इन विचारों ने समस्या के हल के लिए सुस्पष्ट दिशानिर्देशों का खाका तैयार करने में मदद की।

1. जनता की भलाई प्रस्थान बिन्दु होना चाहिए।

2. भावी पीढ़ियों के हितों को ध्यान में रखना चाहिए - समस्या का दूरगामी समाधान निकलना चाहिए न कि सिर्फ़ तात्कालिक समाधान।

3. समस्या पर सभी पहलुओं से विचार करना चाहिए ताकि एक आपदा को दूर करने से कोई दूसरी आपदा न पैदा हो जाये।

स्वावलम्बन पर बल देते हुए टीम ने आर्थिक ज़रूरतों के लिए ऊपर के आदेशों का इन्तज़ार नहीं किया। उन्होंने एक प्रस्ताव तैयार किया और जनता के साथ विचार-विमर्श करके अन्तिम योजना तैयार कर ली गयी। कारख़ाने अब अपने हानिकारक कूड़े-कचरे का उचित प्रबंधन करने और उन्हें उपयोगी बनाने के रास्ते निकालने के लिए स्वयं उत्तरदायी होंगे। रसायनों से युक्त गन्दा और बेकार पानी अब जलाशयों में एकत्र किया जायेगा और उसे साफ़ कर सिंचाई में इस्तेमाल किया जायेगा।

त्सित्सिहार शुगर रिफ़ाइनरी में औद्योगिक कूड़े-कचरे को उपयोगी चीज़ों में बदलने के लिए नयी शॉप स्थापित की गयी। अवशिष्ट पदार्थों से प्रतिवर्ष 1400 टन कम लागत का बढ़िया सीमेण्ट पैदा किया जाता था। जले हुए कोयले से प्रतिवर्ष 20 लाख ईंटें तैयार की जाती थीं जिनका इस्तेमाल और नई शॉपों को तैयार करने में किया जाता था। ये शॉप गन्ने की जड़ों से अल्कोहलिक स्पिरिट तैयार करती थीं, रद्दी शक्कर से प्रतिदिन 2 टन डिस्टिल्ड अल्कोहल तैयार करती थीं और एक पेपर मिल के निकट के गड्ढे से प्रतिवर्ष लगभग 150 टन लुगदी इकट्ठा कर उनसे पैकेजिंग पेपर बनाती थीं।

जून 1970 में, मज़दूरों, किसानों, सैनिकों, छात्रों और स्थानीय निवासियों ने मिलकर गन्दे पानी को सिंचाई के लिये इस्तेमाल करने की एक परियोजना में भाग लिया। प्रतिदिन 5000 से अधिक लोग कार्यस्थल पर आते थे और छह महीने के भीतर ही एक विशाल जलाशय और बाँध का निर्माण कर दिया गया।

जनवरी 1971 में, ननचियांग के जल में ऑक्सीजन की मात्रा मापने के लिये हुए परीक्षण से यह पता चला कि पिछले वर्ष की तुलना में अब पांच से दस गुना अधिक ऑक्सीजन मौजूद है। पीला पदार्थ और दुर्गन्ध दोनो ग़ायब हो गये थे और नदी में मछलियों की संख्या बढ़ने लगी थी।

यह तो महज़ एक उदाहरण है, दरअसल त्सित्सिहार के लोगों की ही तरह पूरे चीन में प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए लाखों लोगों को लामबन्द किया गया। लेकिन यह बिना वर्ग संघर्ष के नहीं हुआ। इस प्रश्न पर जमकर संघर्ष हुआ कि यह सब 'किसके लिये' और 'किस लिये' है?

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान मज़दूरों के बीच बहस छेड़ दी गयी। क्या किसी कारख़ाने को सिर्फ़ स्वयं की और अपने उत्पादन की परवाह करनी चाहिए या पूरी जनता की? क्या वे 'मुनाफ़े को कमान में रखने' के रास्ते पर जा रहे हैं या संयंत्र को संचालित करने सम्बन्धी तमाम फैसले, 'सच्चे दिल से जनता की सेवा करने' और मज़दूरों-किसानों के स्वास्थ्य और जीवन-निर्वाह को ध्यान में रखते हुए लिये जाने चाहिए?

समूचे चीन में "तीन क़िस्म के रद्दी पदार्थों - रद्दी द्रव पदार्थ, रद्दी गैसों और धातु-कचरे के ख़िलाफ़ जनअभियान" शुरू किया गया। यह नारा दिया गया कि "हानिकारक चीज़ों को लाभदायक चीज़ों में बदल दो।" पुन: "रद्दी पदार्थों" के प्रश्न पर किस तरह विचार किया जाये। क्या यह औद्योगिक समाज की अपरिहार्य "बुराई" है? क्या हर तरह के रद्दी पदार्थों को इकट्ठा करके उन्हें कहीं और फेंक देने मात्र से इस समस्या से निपटा जा सकता है? क्या यह एक ऐसी समस्या है जिससे हर व्यक्ति और हर कारख़ाने को सरोकार रखना चाहिए?

किसी चीज़ को पैदा करने में संसाधनों का कुछ अंश नये उत्पादों में रूपान्तरित हो जाता है और शेष "रद्दी" हो जाता है। लेकिन प्रश्न यह था कि इस "रद्दी पदार्थ" को किस तरह देखा जाये? किस दृष्टिकोण से और किस रवैये से? मज़दूरों के व्यापक समुदाय को माओ की दार्शनिक कृतियों का अध्ययन करने के लिए लामबन्द किया गया, विशेषकर अन्तरविरोध के नियम का अध्ययन करने के लिये जो हर चीज़ को दो में बाँटता है। उन्होंने यह रवैया अख़्तियार किया कि "वस्तुगत विश्व को जानने और उसे बदलने की लोगों की क्षमता की कोई सीमा नहीं है।"

एकांगी, आधिभौतिक दृष्टिकोण से, रद्दी पदार्थों को उपयोगी नहीं बनाया जा सकता। लेकिन क्रान्तिकारी, भौतिकवादी और द्वंद्वात्मक दृष्टि यह बताती है कि किसी एक दशा में "रद्दी पदार्थ" भिन्न दशाओं के अन्तर्गत मूल्यवान हो सकता है। और इस प्रकार "रद्दी पदार्थ" को उपयोगी पदार्थ में बदला जा सकता है। यदि यूँ ही छोड़ दिया जाये तो औद्योगिक कचरा वातावरण को विषाक्त करता है और लोगों को नुक़सान पहुँचाता है। लेकिन जब इन रद्दी पदार्थों के संघटन (कम्पोजिशन) का अध्ययन किया गया और उनमें बदलाव किया गया तो यह पाया गया कि उन्हें उपयोगी कच्चे मालों और उत्पादों में बदला जा सकता है। इस प्रकार इसे एक "निपटारे की समस्या" के रूप में देखने के बजाय जनसमुदाय ने इसे "उपयोग की समस्या" के रूप में देखे जाने के लिए संघर्ष किया। और यह सब इसलिए हुआ क्योंकि समाजवादी निर्माण के दौर में समाज की चालक शक्ति मुनाफ़ा नहीं, बल्कि मनुष्य था। इसी वजह से प्रदूषण और पर्यावरण संरक्षण की समस्या से काफ़ी हद तक निपटा जा सका।

.संदीप

मज़दूर वर्ग का नारा होना चाहिए – "मज़दूरी की व्यवस्था का नाश हो!"

कार्ल मार्क्स

अपनी श्रम-शक्ति बेच कर–और वर्तमान व्यवस्था में उसे यह बेचनी ही पड़ती है–मज़दूर अपनी श्रम-शक्ति पूँजीपति को इस्तेमाल करने के लिए सौंप देता है,–पर कुछ तर्कसंगत सीमाओं के भीतर। मज़दूर अपनी श्रम-शक्ति को क़ायम रखने के लिए उसे बेचता है, नष्ट करने के लिए नहीं,–हाँ, इस्तेमाल के दौरान में वह भले ही थोड़ी घिस जाये, या कम हो जाये। यह भी पहले से मान लिया जाता है कि यदि मज़दूर ने दैनिक या साप्ताहिक मूल्य पर अपनी श्रम-शक्ति बेची है, तो एक दिन में या एक सप्ताह में उसकी श्रम-शक्ति की दो दिन या दो सप्ताह के बराबर घिसाई या बरबादी नहीं होगी। फ़र्ज़ कीजिये, 1,000 पौण्ड की एक मशीन है। यदि वह दस साल तक चलती है, तो जिन मालों के उत्पादन में उससे काम लिया जाता है, उनके मूल्य में वह हर साल पौण्ड जोड़ेगी। यदि वह पाँच साल में ही बेकार कर डाली जाती है तो वह हर साल 200 पौण्ड का मूल्य जोड़ेगी। या यूँ कहिये कि उसकी सालाना घिसाई उतनी ही कम होती है जितने अधिक समय तक मशीन काम देती है और उसकी घिसाई उतनी ही अधिक होती है जितने कम समय में उसे बेकार किया जाता है। परन्तु इस मामले में आदमी और मशीन में फ़र्क़ होता है। मशीन जिस अनुपात में इस्तेमाल की जाती है, ठीक उसी अनुपात में घिसती नहीं है। आदमी, इसके विपरीत, उससे अधिक अनुपात में घिस जाता है। केवल काम के घण्टों की संख्या की वृद्धि से आदमी के घिसने का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता।

मज़दूर काम के दिन को छोटा करने की कोशिश करते हैं और उसे फिर से उसकी पुरानी विवेकपूर्ण सीमाओं के अन्दर लाने का प्रयत्न करते हैं, या जब क़ानून के द्वारा काम के दिन की सीमा बँधवाना सम्भव नहीं होता, तब मज़दूरी बढ़वाकर ज़्यादा काम पर रोक लगाते हैं। इसके लिए वे मज़दूरी में ऐसी बढ़ती कराने की कोशिश करते हैं जो सिर्फ़ उनसे लिये गये अतिरिक्त श्रम के अनुपात में ही नहीं, बल्कि उससे बड़े अनुपात में हो। ऐसा करके मज़दूर केवल अपने प्रति और अपनी नस्ल के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करते हैं। ऐसा करके वे केवल पूँजी की ज़ालिमाना लूट को सीमित करने की कोशिश करते हैं। समय मानव विकास की परिधि है। जिस आदमी के पास अपनी इच्छानुसार उपयोग करने के लिए ज़रा भी स्वतन्त्र समय नहीं है, जिसका पूरा जीवन, निद्रा, भोजन, आदि, चन्द शारीरिक आवश्यकताओं के लिए ज़रूरी क्षणों को छोड़कर, पूँजीपति के लिए मेहनत करने में ख़र्च होता है, वह आदमी बोझा ढोने वाले पशु से भी बदतर है। वह तो महज़ एक मशीन बन जाता है जो विदेशी दौलत पैदा करने के काम में आती है। उसका शरीर जर्जर और मस्तिष्क पशु-तुल्य हो जाता है। फिर भी, आधुनिक उद्योग-धन्धों का इतिहास बताता है कि यदि पूँजी को रोका नहीं जाता है, तो वह बेतहाशा और निर्ममतापूर्वक समस्त मज़दूर वर्ग को घोर पतन के गर्त में धकेलने का काम जारी रखेगी।

काम के दिन को लम्बा करके पूँजीपति पहले से ज़्यादा मज़दूरी देते हुए भी श्रम के मूल्य को कम कर सकता है। यह उस वक़्त होता है जब मज़दूरी में बढ़ती उतनी नहीं होती जितना मज़दूर से अतिरिक्त काम लिया जाता है, और इसके परिणामस्वरूप मज़दूर की श्रम-शक्ति जल्दी घिस जाती है। यह एक और ढंग से भी किया जा सकता है। मिसाल के लिए, आपके मध्य-वर्गीय गणना-विशारद आप से कहेंगे कि लंकाशायर के मज़दूर परिवारों की औसत मज़दूरी में बढ़ती हुई है। वे यह भूल जाते हैं कि पहले जहाँ केवल परिवार का प्रमुख पुरुष ही काम करता था, वहाँ अब उसकी पत्नी और शायद तीन या चार बच्चे भी पूँजी की चक्की में पिसते हैं। और इसलिए परिवार की कुल मज़दूरी में जो बढ़ती हुई है, वह परिवार से लिये जाने वाले कुल अतिरिक्त श्रम के अनुरूप नहीं है।

आजकल उद्योग की उन सभी शाखाओं में जो फ़ैक्टरी-क़ानूनों के मातहत हैं, काम के दिन पर कुछ सीमाएँ लगी हुई हैं। पर इन सीमाओं के बावजूद यह आवश्यक हो सकता है कि, और कुछ नहीं तो मज़दूरों के श्रम के मूल्य के पुराने स्तर को क़ायम रखने के लिए, उनकी मज़दूरी बढ़ाई जाये। श्रम की तीव्रता बढ़ा कर एक घण्टे में आदमी से उतनी ही ताक़त ख़र्च कराई जा सकती जितनी वह पहले दो घण्टे में ख़र्च करता था। इन उद्योगों में, जिन पर फ़ैक्टरी-क़ानून लागू हो गये हैं, यह चीज़ किसी हद तक मशीनों को तेज़ करके, और उन मशीनों की संख्या बढ़ा कर जिन्हें अब अकेले एक आदमी को देखना पड़ता है, की गयी है। यदि श्रम की तीव्रता में होने वाली वृद्धि का, या एक घण्टे में लिए जाने वाले श्रम के परिमाण में बढ़ती का, काम के दिन की लम्बाई में होने वाली कमी से कुछ उचित अनुपात रहता है, तो मज़दूर की ही जीत होगी। पर यदि यह सीमा भी पार कर ली जाती है तो एक ढंग से मज़दूर का जो फ़ायदा हुआ है, वह दूसरे ढंग से उससे छीन लिया जाता है, और तब हो सकता है कि दस घण्टे का काम उसके लिए उतना ही प्राणलेवा बन जाये जितना पहले बारह घण्टे का था। श्रम की बढ़ती हुई तीव्रता के अनुसार मज़दूरी बढ़वाने के लिए लड़कर मज़दूर पूँजी की इस प्रवृत्ति को रोकने की जो कोशिश करता है, उसके द्वारा वह केवल अपने श्रम के मूल्य को कम होने से रोकता है और अपनी नस्ल को ख़राब होने से बचाता है।

... ...

आप सब जानते हैं कि कुछ ऐसे कारणों से जिनका स्पष्टीकरण इस समय आवश्यक नहीं है, पूँजीवादी उत्पादन एक निश्चित अवधि में पूरे हो जाने वाले कुछ चक्रों में घूमता है। पहले वह एक निश्चल अवस्था में होता है, फिर उसमें अधिकाधिक जीवन दिखाई पड़ने लगता है, फिर समृद्धि का काल आता है, उसके बाद व्यवसाय आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है, फिर संकट टूट पड़ता है और अन्त में फिर रुकावट की हालत आ जाती है। मालों के बाज़ार-भाव और मुनाफ़े की बाज़ार-दरें इन अवस्थाओं का अनुसरण करती हैं और कभी औसत से कम हो जाती हैं तथा कभी औसत से ज़्यादा हो जाती हैं। पूरे चक्र पर विचार कीजिये तो आप को पता चलेगा कि बाज़ार-भाव के एक भटकाव का असर दूसरे भटकाव से बराबर हो जाता है और यदि चक्र का औसत निकाला जाये, तो मालों के बाज़ार भाव का नियमन उनके मूल्यों के द्वारा ही होता है। अस्तु, गिरते बाज़ार-भावों की और संकट तथा सुस्ती की अवस्था में, मज़दूर यदि नौकरी से निकाला नहीं जाता, तो उसकी मज़दूरी तो ज़रूर ही काट ली जाती है। यदि वह अपनी जेब नहीं कटने देना चाहता तो ज़रूरी है कि बाज़ार-भावों के गिरने की इस दशा में भी, पूँजीपति से इस प्रश्न पर मोल-भाव करे कि उसकी मज़दूरी में किस अनुपात में कटौती करना आवश्यक हो गया है। समृद्धि के काल में, जब अतिरिक्त मुनाफ़ा हो रहा था, यदि उसने मज़दूरी बढ़वाने के लिए संघर्ष नहीं किया था, तो एक पूरे औद्योगिक चक्र का औसत ध्यान में रखते हुए, उसको औसत मज़दूरी भी नहीं मिलेगी, यानी वह अपने श्रम का मूल्य तक नहीं हासिल कर सकेगा। मज़दूर से यह माँग करना मूर्खता की हद है कि उसकी मज़दूरी पर चक्र की बुरी अवस्थाओं का लाज़िमी प्रभाव तो पड़ने दिया जाये, पर चक्र की समृद्धिशाली अवस्थाओं में अपना नुक़सान पूरा करने की उसे कोशिश नहीं करनी चाहिए। आम तौर पर, सभी मालों के मूल्यों के अमल में आने का केवल यही तरीका है कि माँग और पूर्ति के अनवरत उतार-चढ़ाव के कारण बाज़ार-भाव लगातार बदलते रहते हैं, कभी घटते है तो कभी बढ़ जाते हैं और इस प्रकार नुक़सान पूरा कर लेते हैं। वर्तमान व्यवस्था में दूसरे मालों की तरह श्रम भी एक माल ही है। इसलिए, अपने मूल्य के बराबर औसत दाम पर बिकने के लिए, श्रम के लिए भी ज़रूरी है कि वह उसी तरह के उतार-चढ़ाव से गुजरे। श्रम को एक तरफ़ तो एक माल मानना और दूसरी तरफ़ उसे उन नियमों से मुक्त कर देना जो मालों के दामों का नियमन करते हैं – यह बिल्कुल बेहूदा बात है। गुलाम को जीवन-निर्वाह के लिए स्थायी रूप से निश्चित मात्रा में साधन मिलते थे। मज़दूरी पर काम करने वाले श्रमजीवी को वे नहीं मिलते। और कुछ नहीं तो, एक समय पर उसकी मज़दूरी में जो कटौती होती है, उसे पूरा करने के लिए ही उसे दूसरे समय मज़दूरी बढ़वाने को कोशिश करनी चाहिए। और यदि वह पूँजीपति की इच्छा को, उसके हुक़्म को जायेगा, एक स्थायी आर्थिक नियम के रूप में स्वीकार करके बैठ जायेगा, तो उसे उन तमाम मुसीबतों को भोगना पड़ेगा जो गुलाम भोगता था, पर गुलाम की सुरक्षा उसे नसीब नहीं होगी।...

... ...

मज़दूरी की दर अपेक्षाकृत ऊँची होने के बावजूद श्रम की उत्पादन-शक्ति के बढ़ने से पूँजी का संचय तेज़ हो जाता है। इससे एडम स्मिथ की तरह, जिसके ज़माने में आधुनिक उद्योग अपने बाल्य-काल में ही था, कोई यह नतीजा निकाल सकता है कि पूँजी का संचय तेज़ होने से मज़दूर का पलड़ा भारी हो जायेगा, क्योंकि उसके श्रम की माँग बढ़ेगी। इसी दृष्टिकोण से सोचते हुए बहुत से तत्कालीन लेखकों ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि यद्यपि पिछले बीस वर्षों में अंग्रेजी पूँजी इंग्लैण्ड की आबादी के मुक़ाबले में बहुत तेज़ी से बढ़ी है, पर मज़दूरी बहुत नहीं बढ़ी। बात असल में यह है कि संचय की प्रगति के साथ-साथ पूँजी की बनावट में अधिकाधिक परिवर्तन होता जाता है। कुल पूँजी का वह भाग जो अचल पूँजी के दूसरे भाग की तुलना में, जो अचल पूँजी कहलाता है, यानी जिसमें मशीन, कच्चा माल, और हर प्रकार के उत्पादन के साधन आते हैं, पूँजी के दूसरे भाग की तुलना में, जो मज़दूरी की शक्ल में अथवा श्रम ख़रीदने के लिए ख़र्च किया जाता है, अधिक तेज़ी से बढ़ता है। मिस्टर बार्टन, रिकार्डो, सिसमोन्दी, प्रोफ़ेसर रिचर्ड जोन्स, प्रोफ़ेसर रैमजे, चेरबुलिएज, आदि, ने इस नियम को कमोबेश सही रूप में पेश किया है।

यदि पूँजी के इन दो तत्त्वों का अनुपात शुरू में 1: 1 था तो उद्योग की प्रगति के साथ वह 5 : 1 हो जायेगा और इसी तरह बदलता जायेगा। यदि 600 की कुल पूँजी में से 300 औज़ारों, कच्चे माल, आदि, पर ख़र्च किये जाते हैं और 300 मज़दूरी पर, तो कुल पूँजी के दुगने होते ही 300 के बजाये 600 मज़दूरों की माँग पैदा हो जायेगी। पर यदि 600 की पूँजी में से 500 मशीनों, समान, आदि, पर और सिर्फ़ 100 मज़दूरी पर ख़र्च होते हैं, तो 300 के बजाये 600 मज़दूरों की माँग पैदा करने के लिए इसी पूँजी को 600 से 3,600 हो जाना पड़ेगा। अतएव, उद्योग की प्रगति में श्रम की मांग पूँजी के संचय के साथ-साथ नहीं बढ़ती। वह बढ़ती तो है; पर पूँजी जितनी ही तेज़ी से बढ़ती है, श्रम की माँग उतनी ही धीरे-धीरे बढ़ती है।

इन चन्द इशारों से यह बात साफ़ हो जानी चाहिए कि आधुनिक उद्योग-धन्धों का विकास खुद मज़दूर के ख़िलाफ़ पूँजीपति का पलड़ा अधिकाधिक भारी करता जाता है। और इसलिए पूँजीवादी उत्पादन की आम प्रवृति मज़दूरी का औसत स्तर ऊपर उठाने की नहीं, बल्कि उसे नीचे गिराने, या श्रम के मूल्य को कमोबेश उसकी अल्पमत सीमा पर पहुँचा देने की है। जब इस व्यवस्था में चीज़ों की प्रवृति ही ऐसी है, तो क्या इसका यह मतलब होता है कि मज़दूर वर्ग को पूँजी के हमलों का मुक़ाबला करना बन्द कर देना चाहिए और अस्थायी रूप से अपनी हालत सुधारने के उसे कभी-कभी जो अवसर मिलते हैं, उनका सर्वोतम उपयोग करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए? यदि मज़दूर ऐसा करेंगे तो वे सब के सब उन खाना-ख़राब बदनसीब इन्सानों में जा मिलेंगे जिनकी मुक्ति की कोई आशा नहीं रह गयी है। मैं समझता हूँ, मैंने यह सिद्ध कर दिया है कि जीवन-स्तर के लिए मज़दूरों के संघर्ष ऐसी घटनाएँ हैं जिन्हें मज़दूरी की पूरी व्यवस्था से अलग नहीं किया जा सकता, कि तनख़्वाह बढ़ाने की मज़दूरों की सौ में से निन्यानवे कोशिशें केवल अपने श्रम के मूल्य को ज्यों का त्यों क़ायम रखने की कोशिशें होती हैं, और यह कि मज़दूरों को चूँकि अपने-आपको मालों की तरह बेचना पड़ता है, इसलिए लाज़िमी हो जाता है कि वे पूँजीपति से अपने दाम के बारे में मोल-भाव करें। यदि मज़दूर पूँजी के साथ अपने रोज़मर्रा के संघर्ष में झुक जायेंगे तो निश्चय है कि वे कोई बड़ा आन्दोलन छेड़ने में भी असमर्थ रहेंगे।

इसके साथ-साथ, और मज़दूरी की व्यवस्था के साथ चलने वाली आम गुलामी से बिल्कुल अलग, मज़दूर वर्ग को यह नहीं समझना चाहिए कि इन रोज़मर्रा के संघर्षो का अन्त में कोई बहुत बड़ा परिणाम निकलेगा। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे किन्हीं प्रभावों से लड़ रहे हैं, लेकिन इन प्रभावों के कारणों से नहीं लड़ रहे हैं; वे नीचे की ओर धकेलने वाली गति को धीमा कर रहे हैं, पर उसकी दिशा नहीं बदल रहे हैं; वे मर्ज़ के असरात को कम करने के लिए दवा दे रहे हैं, पर मर्ज़ को दूर नहीं कर पा रहे हैं। ये छापेमार लड़ाइयाँ ज़रूरी हैं, और उनसे अलग नहीं रहा जा सकता, और पूँजी के कभी न रुकने वाले हमलों या बाज़ार के अनवरत परिवर्तनों के कारण वे लगातार फूटती रहती हैं। पर, मज़दूरों को सिर्फ़ उन्हीं में डूबकर नहीं रह जाना चाहिए। उन्हें यह समझना चाहिए कि मौजूदा व्यवस्था उन पर तरह-तरह की मुसीबतों के पहाड़ तो तोड़ती है, पर साथ ही, वह उन भौतिक परिस्थितियों और सामाजिक रूपों को भी तैयार करती है जो समाज का आर्थिक पुनर्निर्माण करने के लिए आवश्यक हैं। इसलिए ह्यपूरे दिन के काम के लिए पूरे दिन की मज़दूरी मिले!ह वाले रुढ़िवादी नारे की जगह उन्हें अपने झण्डे पर यह क्रान्तिकारी नारा लिखना चाहिए : ह्यमज़दूरी की व्यवस्था का नाश हो!ह

इस बहुत लम्बी, और मुझे भय है, थकाने वाली विवृति के बाद, जो विषय के साथ न्याय करने के लिए आवश्यक हो गयी थी, मैं नीचे लिखे प्रस्ताव पेश करके अपनी बात ख़त्म करता हूँ:

एक : मज़दूरी की दर में आम बढ़ती से मुनाफ़े की आम दर तो गिरेगी, पर मोटे तौर पर, उसका मालों के दामों पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

दो : पूँजीवादी उत्पादन की आम प्रवृत्ति मज़दूरी का स्तर ऊपर उठाने की नहीं, बल्कि नीचे गिराने की है।

तीन : ट्रेड यूनियनें पूँजी के हमलों के प्रतिरोध के केन्द्रों के रूप में अच्छा काम करती हैं। आंशिक रूप से, वे अपनी शक्ति का अविवेकपूर्ण उपयोग करने के कारण असफल होती हैं। आम तौर पर, उनकी असफलता का कारण यह है कि वे अपने को वर्तमान व्यवस्था के प्रभावों के ख़िलाफ़ एक छापामार युद्ध चलाने तक सीमित रखती हैं और उसके साथ-साथ इस व्यवस्था को ही बदलने की कोशिश नहीं करतीं, अपनी संगठित शक्तियों को मज़दूर वर्ग की अन्तिम मुक्ति के लिए, अर्थात मज़दूरी की व्यवस्था के अन्तिम ख़ात्मे के लिए, इस्तेमाल नहीं करतीं।

आयरन हील का एक अंश

(पेज 4 से आगे)

'पर मान लो मशीनों और दुनिया के स्वामित्व के संघर्ष में पूंजीपति जीत जाएं।' कोवाल्ट ने पूछा।

'तब हम और मजदूर और आप सब इतिहास के किसी भी कमाऊ और कुख्यात अधिनायक की तरह के क्रूर अधिनायकत्व के इस्पाती जूतों के नीचे रौंद दिए जाएंगे। इस अधिनायक का उपयुक्त नाम होगा 'आयरन हील'।

देर तक चुप्पी बनी रही। सभी कुछ गंभीर चिंतन में लगे थे।

'पर तुम्हारा यह समाजवाद का एक सपना है, सपना।' काल्विन ने दोहराया।

'मैं आपको कुछ दिखा दूंगा जो सपना नहीं है। उस 'कुछ' को मैं कुलीनतंत्र कहूंगा। आप चाहें तो इसे धनिकतंत्र कह सकते हैं। हमारा मतलब एक ही होगा–बड़े पूंजीपति या ट्रस्ट। देखें कि आज शक्ति कहां केन्द्रित है। और उसके लिए समाज का वर्ग विभाजन कर लें।'

'समाज में तीन बड़े वर्ग हैं। पहला। धनिक वर्ग जिसमें बैंकर, रेल के मालिक, कार्पोरेशनों के डायरेक्टर और ट्रस्टों के मालिक आते हैं। दूसरा है मध्यवर्ग, आप महानुभाव का वर्ग, जिसमें फार्मर, व्यवसायी, छोटे उत्पादक और पेशेवर लोग आते हैं। और अंत में है मेरा वर्ग– सर्वहारा जिसमें मजदूर आते हैं।

'आप मानेंगे ही कि आज अमरीका में धन का स्वामित्व ही शक्ति का सारभूत उत्स है। इस पर तीनों वर्ग का कैसा अधिकार है? आंकड़े बताते हैं–धनिकों के पास सड़सठ अरब डालर की सम्पति है। इनकी संख्या एक प्रतिशत से भी कम है पर इनके पास सत्तर प्रतिशत सम्पति है। मध्यवर्ग के पास पच्चीस प्रतिशत सम्पदा है। अब बचे सर्वहारा जिसके पास चार अरब है। काम करने वालों में इनका अनुपात सत्तर प्रतिशत है पर उनके पास चार प्रतिशत ही सम्पदा है। तो सत्ता कहां है?'

'तुम्हारे ही आंकड़े के मुताबिक हम मध्यवर्ग मजदूरों से अधिक शक्तिशाली है।' ऐसमुनसेन ने टिप्पणी की।

'हमें कमजोर बताने से आप धनिकों के रूबरू शक्तिशाली नहीं हो जाएंगे। और फिर मैंने अभी खत्म नहीं की है अपनी बात। सम्पदा से भी बड़ी है एक शक्ति जो इसलिए ज्यादा बड़ी है कि उसे छीना नहीं जा सकता। हमारी शक्ति, सर्वहारा की शक्ति, हमारी मांसपेशियों में है, हमारे हाथ में है जो वोट डालते हैं, हमारी उंगालियों में है जो बन्दूक का घोड़ा दबा सकती हैं। यह शक्ति हमसे छीनी नहीं जा सकती। यह आदिम शक्ति है, यह जीवन की नैसर्गिक शक्ति है। यह धन की शक्ति से बड़ी शक्ति है और इस धन को छीना नहीं जा सकता।

'लेकिन आपकी शक्ति आप से अलग की जा सकती है, छीनी जा सकती है। अन्ततः यह छीन ली जाएगी। अभी भी धनतंत्र आप से छीन ही रहा है। और तब आप मध्यवर्ग नहीं रह जाएंगे। आप नीचे उतरकर हमारी तरह सर्वहारा हो जाएंगे। मजे की बात यह है कि तब आप हमारी शक्ति बढ़ाएंगे। हम आप भाइयों का स्वागत करेंगे और कन्धे से कन्धा मिलकर मानवता की सेवा करेंगे।

'आपने देखा कि मजदूर के पास कुछ भी ठोस नहीं है जिसे लूटा जा सके। देश की सम्पदा में उसके हिस्से हैं कुछ कपड़े और घर का थोड़ा फर्नीचर और कभी-कभी एक मामूली सा मकान। पर आपके पास तो है ठोस दौलत–चौबीस अरब और धनिकतंत्र यह सब छीन लेगा। वैसे पूरी संभावना है कि इसके पहले सर्वहारा छीन लेगा यह सब। आपको अपनी हालात दिखाई नहीं देती? मध्यवर्ग बाघ और शेर के बीच एक हिलता–डुलता खरगोश मात्र है। अगर एक नहीं दबोचता तो दूसरा खा लेगा। अगर धनिकतंत्र पहले निगल लेता है तो याद रखें कुछ ही समय की बात है सर्वहारा उसे भी निगल लेगा।

'आपकी वर्तमान सम्पदा भी आपकी शक्ति का सही आकलन नहीं करती। आपके धन की शक्ति आज खाली कौड़ी के बराबर है। तभी तो आप युद्ध का आह्वान कर रहे हैं– 'पूर्वजों की पद्धति की ओर'। पर उसमें दम नहीं है। आप अपनी अशक्तता जानते हैं कि आपकी शक्ति खोखली है। मैं आपको दिखाउंगा इसका खोखलापन।

'फार्मरों की क्या शक्ति है? आधे तो गुलाम ही हैं क्योंकि वे तो बस काश्तकार हैं या गिरवी हैं। एक तरह से सभी गिरवी हैं, इस कारण कि उनके उत्पाद को बाजार तक पहुंचाने के सारे उपकरणों– रेलें, कोल्डस्टोरेज,जहाज, गोदाम भी– पर ट्रस्टों का नियंत्रण है। सबसे बड़ी बात तो यह कि पूंजीपतियों का ही बाजार पर नियंत्रण है। इस मामले में सारे फार्मर असहाय हैं। जहां तक उनकी राजनीतिक और सरकारी शक्ति का सवाल है उस पर बाद में बात करते हैं, सारे मध्यवर्ग की राजनीतिक और सरकारी शक्ति के संदर्भ में।

'दिन–रात पूंजीपति फार्मरों को चूसते हैं– उसी तरह जैसे उन्होंने मिस्टर काल्विन और दूसरे डेरीवालों को चूसा है। उसी तरह व्यवसायी चूसते रहते हैं। आपको याद है कैसे छः महीने में ही न्यूयार्क सिटी के चार सौ सिगार स्टोरों को टुबैको ट्रस्ट ने चूस लिया था? मुझे बताने की जरूरत नहीं आप सब जानते ही हैं कि रेलरोड ट्रस्ट का आज सारी कोयला खदानों पर कब्जा है। क्या स्टैण्डर्ड आयल ट्रस्ट बीसों जहाजरानी कम्पनियों की मालिक नहीं है? क्या उसका तांबे पर नियंत्रण नहीं है और सहायक उद्योग के रूप में वे दूसरे काम नहीं करते? आज अमरीका में दस हजार शहर–कस्बे हैं जिसमें रोशनी स्टैन्डर्ड आयल की वजह से होती है। और इतने ही शहरों में उनके अन्दर और एक दूसरे के बीच परिवहन पर उसी का नियंत्रण है। ऐसे कामों में लगे हजारों छोटे पूंजीपतियों का सफाया हो चुका है। पता है न? उसी तरह आप भी जाने वाले हैं।

'छोटे उत्पादक भी फार्मर की ही तरह है। इन्हें आज कुछ दिन का मेहमान बना दिया गया है। इसी तरह पेशेवर और कलाकार लोग भी एक तरह से कृषि दास ही हो हैं। राजनीतिक लोग भी अनुचर ही हैं। मिस्टर काल्विन आप रात–दिन एक कर फार्मरों और मध्यवर्ग को एक राजनीतिक पार्टी तले क्यों नहीं संगठित करते? क्योंकि पूरानी पार्टी के राजनीतिज्ञ आपकी आदर्शवादिता को कुछ नहीं समझते। और ऐसा क्यों करते हैं? क्योंकि वे भी अनुचर मात्र हैं, जरखरीद, धनिकतंत्र के।

'मैंने पेशेवेर लोगों और कलाकारों को कृषिदास कहा। और क्या हैं वे? प्रोफेसर, पादरी, संपादक धनिकतंत्र के ही मुलाजिम हैं, उनका काम है वैसे ही विचारों का प्रचार जो धनिकतंत्र के विरूद्ध न हों और धनिकतंत्र की प्रशंसा में हों। जब भी वे धनिकतंत्र के विरोधी विचारों का प्रचार करते हैं उन्हें सेवामुक्त कर दिया जाता है और अगर उन्होंने संकट के दिनों के लिए कुछ बचाकर नहीं रखा है तो उनका सर्वहाराकरण हो जाता है। वे या तो नष्ट हो जाते हैं या मजदूरों के बीच आन्दोलनकर्ता की तरह काम करने लगते हैं। यह न भूलें कि प्रेस, चर्च और विश्वविद्यालय ही जनमत को गढ़ते हैं, देश की प्रक्रिया को दिशा देते हैं। जहां तक कलाकारों का सवाल है वे धनतंत्र की रुचियों की तुष्टि में खपते हैं।

पर धन अकेले तो वास्तविक शक्ति बनता नहीं, वह शक्ति का साधन है और शक्ति तो सरकारी होती है। सरकार को कौन नियंत्रित करता है? दो करोड़ सर्वहारा? आप भी इस बात पर हंस पड़ेंगे। अस्सी लाख विभिन्न पेशों में लगा मध्यवर्ग? सर्वहारा की ही तरह भी नहीं। फिर कौन? ढाई लाख की संख्या की संख्या वाला धनिकतंत्र। पर यह ढाई लाख भी सरकार को नियंत्रित नहीं करता, हालांकि वह विशिष्ट सेवा करता है। धनिकतंत्र का दिमाग सरकार को नियंत्रित रखता है और यह दिमाग है शक्तिशाली लोगों के सात ग्रुप। और यह नहीं भूलना चाहिए कि ये ग्रुप आजकल एकदम तालमेल के साथ काम कर रहे हैं।

'मैं आपको उनमें से बस एक–रेलरोड ग्रुप के बारे में बताऊं'। उसके पास लोगों को कोर्ट में पराजित करने के लिए चालीस हजार वकील हैं। उसने अनगिनत जजों, बैंकरों, संपादकों, मंत्रियों और यूनिवर्सिटी वालों और विधायकों को फ्री पास दे रखे हैं। हर राजधानी में उनकी ऐशोआराम से पोसी जा रही लॉबी है। उसके पास हजारों दलाल और छुटभैये नेता हैं जो कहीं भी अपने आकाओं के हित में छोटे–बड़े किसी तरह के सही–गलत काम के लिए जुटे रहते हैं।

'महानुभाव मैंने तो सात में से बस एक ग्रुप का खाका खींचा है। आपकी चौबीस अरब की सम्पति पच्चीस सेन्ट के बराबर भी सरकारी शक्ति नहीं प्रदान करती। वह खोखली कौड़ी है और वह भी छिनने वाली है। आज धनिकतंत्र सर्वशक्तिमान है। आज उसके कब्जे में है, सीनेट, कांग्रेस, अदालतें और राज्यों की विधायिकाएं। इसलिए वह अपने अनुसार कानून बनवाता है। यही नहीं, कानून के पीछे उसे लागू करवा पाने वाली शक्ति होनी चाहिए। उसके लिए उसके पास है पुलिस, फौज, नौसेना और अंत में मिलिशिया, जिसका मतलब है हम, आप, सब।

कुछ खास बहस नहीं हुई। और डिनर खत्म हो गया। इजाजत मांगते वक्त भी चुप्पी–सी बनी रही। लग रहा था समय का अहसास उन्हें डरा गया था।

काल्विन ने अर्नेस्ट से कहा:

'स्थिति वास्तव में खराब है। जैसे तुमने उसे पेश किया उससे मेरा कोई खास विवाद नहीं। मेरी असहमति बस मध्यवर्ग के अंत को लेकर है। हम बच जाएंगे और ट्रस्टों को उखाड़ फेकेंगे।'

'और पूर्वजों की राह लौट जाएंगे।' अर्नेस्ट ने बात पूरी कर दी।

'फिर भी यह मशीन भंजन से तो कम है और सब बकवास है इतना तो मैं जानता हूं। लेकिन करें क्या? जीवन ही बकवास हो गया है– धनतंत्र की चालों के कारण। कुछ भी हो हमारा मशीन भंजन कम से कम व्यावहारिक और संभव है जो तुम्हारा सपना नहीं। तुम्हारा समाजवादी सपना... .हुंह बस सपना है। हम तुम्हारे पीछे नहीं जा सकते।'

'काश आप महानुभाव थोड़ा विकास और समाजशास्त्र जानते। हमारी काफी कठिनाइयां कम हो जातीं, अगर आप जानते होते।' अर्नेस्ट ने हाथ मिलाते हुए कहा।

बंग्लादेश की हत्यारी गारमेंट फैक्टरियां

गत 24 नवंबर को यूरोप और अमेरिका के बड़े–बड़े ब्रांडों के लिए कपड़े बनाने वाली बंग्लादेश की एक गारमेंट फ़ैक्टरी में लगी भीषण आग ने कम से कम 112 मज़दूरों को मौत की नींद सुला दिया। ताजरीन फैशंस लिमिटेड नामकी यह फ़ैक्टरी वाल–मार्ट, कैरेफोर और आईकेईए जैसे बड़े विदेशी ग्राहकों के लिए कपड़े बनाती थी। इसमें काम करने वाले मज़दूरों ने घटना के बाद बताया कि इस फ़ैक्टरी में सुरक्षा के कोई इंतजाम नहीं थे। अग्निशमक यन्त्र केवल जांचकर्ताओं को दिखाने के लिए लगाए गए थे। पूरी फ़ैक्टरी में एकदम अव्यवस्थित तरीके से काम होता था और कोई आपातकालीन निकास नहीं था। वहीं सामान्य तौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले निकासद्वारों को बाहर से ताला लगाकर बन्द कर दिया गया था। जब आग का अलार्म बजा तो सुपरवाइज़रों ने मज़दूरों को काम छोड़कर भागने के बजाय काम करते रहने का आदेश दिया। 2009 में स्थापित इस फ़ैक्टरी में 1500 मज़दूर काम करते थे। घटना के समय फैली अफरातफरी और मौत के मुंह में फंसे मज़दूरों की मजबूरी का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि कई मज़दूर इस आठ मंज़िला इमारत की ऊपरी मंजिलों की खिड़कियों से नीचे कूद पड़े।

बंग्लादेश और भारत सहित तीसरी दुनिया के अन्य देशों के लिए यह कोई नयी घटना नहीं है। सुरक्षा उपकरणों और सुरक्षा व्यवस्था की आपराधिक उपेक्षा और काम के जानलेवा हालात बंग्लादेश की लगभग सभी फैक्टरियों में स्थायी तौर पर विद्यमान रहते हैं। पिछले छह सालों में सिर्फ फैक्टरियों में लगी आग ही 300 से ज्यादा मज़दूरों की जिन्दगी लील चुकी है। हालिया घटना इस बात का सबूत है कि पिछली घटनाओं से मालिकों और सरकार ने कोई सबक नहीं सीखा है बल्कि स्थितियां बद से बदतर ही होती गयी हैं।

भारत, बंग्लादेश, इंडोनेशिया, चीन, मेक्सिको, ब्राजील जैसे तीसरी दुनिया के और उभरती अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों की सस्ती श्रमशक्ति और लचर श्रम कानूनों और साथ ही कमज़ोर ट्रेड यूनियन आन्दोलन से उत्पन्न हुई परिस्थितियों का फ़ायदा उठाने के लिए दुनिया भर की कम्पनियों का इन देशों का रुख करना एक ट्रेंड बन गया है। इन देशों में व्यापक पैमाने पर ठेके और पीसरेट पर मज़दूरों से काम करवाया जाता है और इस तरह बड़ी–बड़ी कम्पनियां मज़दूरों के प्रति किसी भी जवाबदेही से अपने आप को बचा लेती हैं। सस्ते से सस्ता काम करवाने के लिए वे अपना काम इन देशों की कम्पनियों को आउटसोर्स करती हैं और वालमार्ट जैसी कम्पनियां इतने पर भी अपने आउटसोर्सरों पर लगातार दबाव डालती रहती हैं। इसका नतीजा होता है कि अपना मुनाफ़ा बनाए रखने के लिए तीसरी दुनिया के देशों की कम्पनियां मज़दूरों की सुविधाओं में हर तरह की कटौती करती हैं, सुरक्षा व्यवस्था को बिल्कुल ही नज़रन्दाज़ कर देती हैं और शोषण और उत्पीड़न के नित नए तरीक़े ईजाद करती रहती हैं।

कम्पनी मालिकों को इन देशों की सरकारों का पूरा समर्थन रहता है। एक्सपोर्ट से होने वाली आय पर ये देश इतने निर्भर हैं कि मालिकों के मनमानेपन पर लगाम लगाना तो दूर उल्टे वे उनका पूरा पक्षपोषण करते हैं। हैरानी की बात नहीं कि साल–दर–साल फ़ैक्टरी दुर्घटनाओं में मज़दूरों की बड़ी संख्या में मौत होने के बावजूद फ़ैक्टरी मालिकों पर आजतक कोई कार्रवाई नहीं हुई है।

बंग्लादेश में लगभग 4000 गारमेंट फ़ैक्टरियां हैं जो विदेशी कम्पनियों को गारमेंट एक्सपोर्ट करती हैं। बंग्लादेश का यह व्यवसाय लगभग 20 अरब डालर का है और कहने की बात नहीं कि बंग्लादेशी पूंजीपतियों और वहां की सरकार के लिए यह सोने के अण्डे देने वाली

(पेज 6 पर जारी)

(दूसरी किस्त)

स्त्री मज़दूरों और उनकी माँगों के प्रति पुरुष मज़दूरों का दृष्टिकोण

कविता

पुरुष मज़दूर अगर बहुत संकीर्ण दायरे में सोचेंगे और केवल अपने तात्कालिक आर्थिक हितों को ही देखते रहेंगे, अगर वे व्यापक से व्यापकतर स्तर पर संगठित होकर अपने आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों की हिफ़ाजत एवं विस्तार के लिए लड़ने के बारे में नहीं सोचेंगे, तो वे स्त्री मज़दूरों के साथ स्वाभाविक तौर पर प्रतिस्पर्द्धा और द्वेष की भावना महसूस करेंगे!

स्त्री मज़दूरों को अपने संघर्ष में बराबर का भागीदार बनाने की अनिवार्य आवश्यकता वे तभी महसूस करेंगे, जब उनकी वर्ग-चेतना उन्नत होगी। इस बात को गहराई से जानने के लिये हमें पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की कुछ बुनियादी चीज़ों को समझना होगा।

पूँजी एक ऐसा मूल्य होती है जो अपने आप में अतिरिक्त मूल्य जोड़ते हुए लगातार मूल्य-संवर्धन करती चलती है। यह अतिरिक्त मूल्य कहाँ से आता है? – यह मज़दूर वर्ग के शोषण से आता है। पूँजीवादी समाज में हर उत्पादन, उत्पादन के सभी साधन और मानवीय इस्तेमाल में आने वाली हर चीज़ एक माल होती है। माल के दो पहलू होते हैं – उपयोग मूल्य और विनिमय मूल्य। यानी विनिमय या ख़रीद-फ़रोख़्त उसी चीज़ का हो सकता है जिसका उपयोग मूल्य हो। यानी हर माल का कोई न कोई उपयोग होता है। माल की दूसरी ख़ासियत यह है कि उसके उत्पादन में श्रम लगता है। माल के उत्पादन में लगा हुआ यह श्रम ही उसमें मूल्य पैदा करता है। बाज़ार में जब एक चीज़ से दूसरी चीज़ का विनिमय होता है तो उनके उत्पादन में लगी हुई श्रम की बराबर मात्रा के आधार पर होता है।

अब सवाल है कि श्रम की मात्रा को मापा कैसे जाये? किसी ख़ास प्रकार के कच्चे माल पर ख़ास औजार और ख़ास हुनर का इस्तेमाल करके ख़ास उपयोगिता की वस्तु बनायी जाती है। श्रम का यह पहलू मूर्त श्रम कहलाता है। अलग-अलग मालों के उत्पादन में अलग-अलग मूर्त श्रम लगता है (जो उसका उपयोग मूल्य तय करता है), पर एक बात समान है कि हर माल के उत्पादन में लगता मानवीय श्रम ही है। समरूपता का यह पहलू अमूर्त श्रम कहलाता है। इसी के द्वारा माल का मूल्य तय होता है। किसी माल के उत्पादन में लगे हुए श्रम की मात्रा उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम के काल से नापी जाती है। अब व्यक्तिगत कौशल, चुस्ती, औज़ार, परिस्थिति आदि के हिसाब से एक ही माल के उत्पादन में अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग समय लगायेंगे अत: मालों का मूल्य व्यक्तिगत श्रमकाल से नहीं, बल्कि सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम से तय होता है। उत्पादन की मौजूदा सामान्य स्थितियों में उस समय की औसत कुशलता और गहनता के द्वारा किसी उपयोग मूल्य के उत्पादन में लगे श्रमकाल को सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम कहते हैं।

अब समझने की बात यह है कि माल-उत्पादन और विनिमय की इस पूरी प्रक्रिया में मुनाफ़ा कहाँ से आता है? अतिरिक्त मूल्य पैदा कैसे होता है?

किसी भी समाज में, श्रमशक्ति एक मानवीय कार्य है। यह मनुष्य के शारीरिक-मानसिक यत्नों का कुल योग है। यही उत्पादन का मुख्य उपादान है। पूँजीवाद के जन्म के साथ ही, छोटे माल-उत्पादकों की तबाही और आदिम पूँजी-संचय के चलते एक ऐसा सामाजिक वर्ग अस्तित्व में आता है जिसके पास उत्पादन या आजीविका का कोई साधन नहीं होता। उसे जीवित रहने के लिए अपनी श्रमशक्ति बेचनी ज़रूरी होती है। इस श्रमशक्ति को वह पूँजीपति ख़रीदता है जो बड़े पैमाने पर उत्पादन के साधनों का मालिक होता है। वह अपनी ज़रूरत के लिए नहीं, बल्कि बेचने के लिए पैदा करता है। इसतरह पूँजीवादी समाज में श्रमशक्ति एक माल बन जाती है। दूसरे मालों की तरह उसका भी मूल्य और उपयोग होता है। दूसरे मालों की ही तरह इसके उत्पादन और पुनरुत्पादन में लगने वाले सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम के परिमाण से ही श्रमशक्ति का मूल्य तय होता है। मज़दूर के श्रम करने की क्षमता बनाये रखने के लिए खाना, कपड़ा, आवास आदि बुनियादी चीज़ें ज़रूरी हैं। बूढ़े और मरने वाले मज़दूरों की जगह नये मज़दूर आयें, इसके लिए मज़दूरों के बच्चा पैदा करने, परिवार चलाने की भी ज़रूरत होगी। तात्पर्य यह कि श्रमशक्ति के उत्पादन और पुनरुत्पादन के लिए मज़दूर के घर-परिवार को चलाने भर का ख़र्च ज़रूरी होगा। यही मज़दूर की श्रमशक्ति का मूल्य होता है।

जहाँ तक श्रमशक्ति के उपयोग मूल्य की बात है, इस मायने में यह सभी दूसरे मालों से भिन्न होता है। अनाज या कपड़ा जैसे किसी माल के उपयोग मूल्य का उपभोग करने से कोई नया उपयोग मूल्य सृजित नहीं होता, पर श्रमशक्ति एक ऐसा माल है, जिसका उपयोग एक नया मूल्य पैदा करता है और इससे भी अहम बात यह है कि स्वयं श्रमशक्ति के मूल्य से भी अधिक मूल्य पैदा करता है। यानी ''श्रमशक्ति सिर्फ मूल्य का ही स्रोत नहीं, बल्कि उसमें निहित मूल्य से भी अधिक मूल्य का स्रोत है'' (मार्क्स : 'पूँजी', खण्ड-1) और, ''पूँजीपति जब श्रमशक्ति को खरीदता है तो उसकी दिलचस्पी इस बढ़े हुए मूल्य में ही होती है'' (वही)। श्रमशक्ति के मूल्य और उसके द्वारा सृजित मूल्य के अन्तर को ही अतिरिक्त मूल्य कहा जाता है।

जैसे, पूँजीपति मज़दूर की एक दिन की श्रमशक्ति खरीदता है। मज़दूर उस श्रमशक्ति का मूल्य, यानी अपनी दिनभर की उजरत या पगार के बराबर मूल्य का उत्पादन चार घण्टे या उससे भी कम में कर लेता है। लेकिन पूँजीपति उससे आठ घण्टे या उससे भी अधिक काम करवाता है। यानी मज़दूर जितना पैदा करता है, उसके मूल्य बराबर उजरत उसे नहीं दी जाती, बल्कि उसे तो दिनभर महज उत्पादन करने लायक बने रहने तक की ही उजरत दी जाती है। इन दोनों के बीच का अन्तर ही अतिरिक्त मूल्य है जिसे पूँजीपति हड़प जाता है। एक कार्यदिवस के श्रम काल का जो हिस्सा मज़दूर की जीविका के लिए आवश्यक होता है, वह आवश्यक श्रमकाल होता है और जिस हिस्से के दौरान पूँजीपति के लिए अतिरिक्त मूल्य पैदा होता है, उसे अतिरिक्त श्रमकाल कहा जाता है। अतिरिक्त श्रमकाल और आवश्यक श्रमकाल का अनुपात ही अतिरिक्त मूल्य की दर होता है, जो मज़दूरों के शोषण की मात्रा प्रदर्शित करती है।

अतिरिक्त मूल्य की दर बढ़ाने के लिए पूँजीपति एक रास्ता यह अपनाता है कि श्रमकाल को ही बढ़ा देता है। इस तरह हासिल किया गया अतिरिक्त मूल्य शुद्ध अतिरिक्त मूल्य कहलाता है। शोषण बढ़ाने के लिए श्रमकाल बढ़ा देने का तरीका आसान तो है, पर इसकी एक सीमा है। अत: पूँजीपति एक दूसरा शातिराना तरीक़ा अपनाता है। वह आवश्यक श्रमकाल को कम कर देता है। इससे सापेक्षिक श्रम काल बढ़ जाता है और पूँजीपति सापेक्षिक अतिरिक्त मूल्य हासिल कर लेता है। पूँजीपति जब नयी मशीनों और नयी तकनीक का इस्तेमाल करता है तो सामान्य श्रम उत्पादकता बहुत बढ़ जाती है और मज़दूर और उसके आश्रितों के भरण-पोषण के लिए ज़रूरी मूल्य का उत्पादन बहुत जल्दी हो जाता है। आवश्यक श्रमकाल घट जाता है यानी श्रम के पुनरुत्पादन के लिए ज़रूरी साधनों का मूल्य कम हो जाता है। श्रम उत्पादकता बढ़ाने के साथ ही श्रम-सघनता बढ़ाकर भी (यानी मशीन की रफ़्तार बढ़ाकर, श्रम का कोटा बढ़ाकर और कुल कार्यदिवस कम किये बिना मज़दूरों की संख्या घटाकर) पूँजीपति आवश्यक श्रमकाल को घटाने का काम करता है। इसके अतिरिक्त अक्सर मज़दूरी कम करके, तरह-तरह के जुर्माने लगाकर और नौकरशाही को मिलाकर, मज़दूरों को मिलने वाली क़ानूनी सुविधाओं में भी कटौती करके पूँजीपति मज़दूर की मज़दूरी उसकी श्रमशक्ति से भी कम कर देता है जिससे मज़दूर परिवारों का जीना मुहाल हो जाता है। कारख़ाना उत्पादन में मशीनें जैसे-जैसे उन्नत होती जाती हैं, स्वचालन जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे मज़दूर के शारीरिक बल की ज़रूरत कम होती जाती है और औरतों तथा बच्चों को काम पर लगाना आसान होता जाता है। औरतों और बच्चों का श्रम अपेक्षाकृत काफ़ी सस्ता होता है। इसलिए पुरुष मज़दूरों पर छँटनी की तलवार लटकने लगती है। श्रम-विभाजन और मशीनों का प्रयोग जितना बढ़ता जाता है, उतनी ही मज़दूरों की बेरोजगारी-अर्द्धबेरोजगारी भी बढ़ती है और श्रम बाज़ार में औरतों की उपस्थिति भी बढ़ती जाती है। इससे मज़दूरों में होड़ बढ़ती जाती है और मज़दूरी घटती जाती है।

देखें कि इस बात को मार्क्स ने कैसे लिखा है: ... मशीन के कारण जो आदमी नौकरी से निकाल दिया गया है, उसकी जगह पर कारख़ाना मालिक सम्भवत: तीन बच्चों और एक औरत को नौकर रख लेता है! क्या उस मज़दूर की मज़दूरी का इतना होना ज़रूरी नहीं था कि उससे तीन बच्चों और एक औरत का भरण-पोषण हो सके? क्या न्यूनतम मज़दूरी का इतना होना ज़रूरी नहीं था कि उससे वंश की रक्षा और वृद्धि हो सके? तब फिर पूँजीपतियों के प्रिय फ़िकरों से क्या सिद्ध होता है? इससे अधिक और कुछ नहीं कि एक मज़दूर परिवार के जीवन निर्वाह के लिए अब पहले से चौगुने मज़दूरों को अपना जीवन खपाना होगा।'' (मार्क्स: 'उजरती श्रम और पूँजी', मास्को, 1985, पृष्ठ. 48-49)

''जिस हद तक मशीनें मांसपेशियों की शक्ति को अनावश्यक बना देती हैं, उस हद तक मशीनें मांसपेशियों की बहुत थोड़ी शक्ति रखने वाले मज़दूरों को और उन मज़दूरों को नौकरी देने का साधन बन जाती हैं, जिनका शारीरिक विकास तो अपूर्ण है पर जिनके अवयव और भी लोचदार हैं। इसलिए मशीनों का इस्तेमाल करने वाले पूँजीपतियों को सबसे पहले स्त्रियों और बच्चों के श्रम की तलाश होती थी। अतएव श्रम तथा श्रमजीवियों का स्थान लेने के लिए जिस विराट यंत्र का आविष्कार हुआ था, वह तुरंत ही मज़दूर के परिवार के प्रत्येक सदस्य को, बिना किसी आयुभेद या लिंग-भेद के, पूँजी के प्रत्यक्ष दासों में भरती करके मज़दूरी करने वालों की संख्या को बढ़ाने का साधन बन गया। उसके बाद से बच्चों को पूँजीपतियों के लिए जो अनिवार्य काम करना पड़ता था, उसने न केवल बच्चों के खेलकूद की जगह ले ली, बल्कि परिवार की आवश्यकताओं के लिए घर पर रहकर किये जाने वाले कुछ सीमित ढंग के स्वतंत्र श्रम की भी जगह ले ली।

''श्रम-शक्ति का मूल्य केवल इसी बात से निर्धारित नहीं होता था कि अकेले वयस्क मज़दूर को जीवित रहने के लिए कितना श्रम काल आवश्यक है, बल्कि इस बात से भी कि मज़दूर के परिवार को जीवित रखने के लिए कितना श्रमकाल आवश्यक होता है। मशीनें उसके परिवार के प्रत्येक सदस्य को श्रम की मण्डी में लाकर पटक देती हैं और इसतरह मज़दूर की श्रमशक्ति के मूल्य को उसके पूरे परिवार पर फैला देती हैं। इस प्रकार मशीनें उसकी श्रमशक्ति के मूल्य को कम कर देती हैं। यह मुमकिन है कि पहले परिवार के मुखिया की श्रमशक्ति को खरीदने में जितना ख़र्च होता था, अब चार सदस्यों के पूरे परिवार की श्रमशक्ति को ख़रीदने में उससे कुछ अधिक ख़र्चा हो; लेकिन उसके एवज़ में एक दिन के श्रम की जगह पर चार दिन का श्रम मिल जाता है, और चार दिन का बेशी श्रम एक दिन के बेशी श्रम से जितना अधिक होता है, उसी अनुपात में इन चार दिनों के श्रम का दाम गिर जाता है। परिवार को जीवित रखने के लिए अब चार व्यक्तियों को न केवल श्रम, बल्कि पूँजीपति के लिए बेशी श्रम भी करना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मशीनें उस मानव-सामग्री में, जो पूँजी की शोषक शक्ति का प्रधान लक्ष्य होती है, वृद्धि करने के साथ-साथ शोषण की मात्रा में भी वृद्धि कर देती है।'' (मार्क्स: पूँजी, खण्ड-एक, पृ. 421-422, मास्को, 1987)

एक मज़दूर की औरत जबतक चूल्हे-चौकठ और बच्चे पालने का काम करती है, तबतक वह विनिमय के लिए माल-उत्पादन की सामाजिक कार्रवाई में भागीदार नहीं होती। अत: तबतक वह अतिरिक्त मूल्य भी नहीं पैदा करती। यानी हाड़तोड़, नीरस घरेलू श्रम करते हुए वह उत्पीड़न और घरेलू दासता की शिकार तो होती है पर राजनीतिक अर्थशास्त्र की दृष्टि से उसे शोषित नहीं कहा जा सकता। पूँजीवादी शोषण की शिकार वह तब होती है जब वह सामाजिक उत्पादन के दायरे में प्रवेश करती है। जबतक औरत घरेलू गुलामी की शिकार होती है, तबतक उसके सोच-विचार का दायरा अत्यन्त संकुचित और दकियानूस होता है। अपनी गुलाम मानसिकता के चलते वह पुरुष की चरण-सेविका भी बनी रहती है और यह भी सोचती है कि चूँकि कमाकर परिवार का पेट भरना मर्द की ही ज़िम्मेदारी है, अत: वह नौकरी के अतिरिक्त और कुछ भी न करे, नौकरी पर ख़तरा आने वाला कोई काम (ट्रेडयूनियन, पार्टी कार्य आदि) न करे और ओवरटाइम खटकर भी कुछ ज्यादा पैसा घर लाये। जब वह सार्वजनिक उत्पादन की दुनिया में प्रवेश करती है तो उसके सोचने का दायरा फैल जाता है, वह साहसी हो जाती है और अपने हक के लिए सामूहिक एकजुटता की ज़रूरत समझने लगती है।

(पेज 14 पर जारी)

(पेज 13 से आगे)

इसीलिए फ्रेडरिक एंगेल्स ने कहा था: ''स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी नारी जाति फिर से सार्वजनिक उत्पादन में प्रवेश करे और इसलिए यह आवश्यक है कि समाज की आर्थिक इकाई होने का वैयक्तिक परिवार का गुण नष्ट कर दिया जाये।'' (एंगेल्स: परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति)

लेनिन ने भी नीरस, उबाऊ और अमानवीय घरेलू गुलामी के ख़िलाफ़ अनेकों स्थान पर लिखा है। समाजवाद के निर्माण के लिए वे इस बात को अनिवार्य मानते थे कि बड़े पैमाने पर किण्डरगार्टेन, शिशुशाला, सामूहिक भोजनालय आदि का निर्माण करके स्त्रियों को घरेलू कामों से छुटकारा दिलाकर सामाजिक उत्पादन और अन्य सार्वजनिक गतिविधियों में भागीदारी का ज्यादा से ज्यादा अवसर दिया जाये। पूँजीवाद वैयक्तिक परिवार के आर्थिक इकाई होने के स्वरूप को, और फलत: घरेलू गुलामी को पूरी तरह नष्ट कदापि नहीं कर सकता। स्त्रियों की स्थिति यदि उत्पादन और अन्य सामाजिक क्षेत्रों में पुरुषों के बराबरी पर हो तो पूँजीवाद न तो स्त्रियों का सस्ता श्रम ख़रीद पायेगा, न ही घरेलू स्त्रियों की पिछड़ी चेतना और स्त्री बनाम पुरुष अन्तरविरोध का लाभ उठाकर अपनी स्थिति मजबूत बना पायेगा। अत: एक ओर तो वह परिवार की घरेलू गुलामी बनाये रखना चाहता है, दूसरी ओर पूँजीवादी उत्पादन की स्वतंत्र गति से लगातार बढ़ता मज़दूरों का शोषण और असहनीय जीवन मज़दूरों के परिवार के स्त्रियों को भी श्रम बाज़ार में उतरने को बाध्य कर देता है।

मार्क्स लिखते हैं: ''... पूँजीवादी व्यवस्था में पुराने पारिवारिक बंधनों का टूटना चाहे जितना भयंकर और घृणित क्यों न प्रतीत होता हो, परंतु आधुनिक उद्योग स्त्रियों, लड़के-लड़कियों और बच्चे-बच्चियों को घरेलू क्षेत्र के बाहर उत्पादन की क्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका देकर परिवार के और नारी तथा पुरुष के सम्बन्धों के एक अधिक ऊँचे रूप के लिए एक नया आर्थिक आधार तैयार कर देता है।'' (पूँजी,खण्ड-एक, पृष्ठ 521)। आगे मार्क्स लिखते हैं कि यदि काम करने वाले सामूहिक दल में औरत-मर्द दोनों शामिल हों तो उपयुक्त परिस्थितियाँ होने पर यह मानवीय विकास का आधार बन जायेगा। पूँजीवाद स्त्रियों को सामाजिक उत्पादन में उतारकर एक ओर तो वस्तुगत रूप से प्रगतिशील काम करता है, लेकिन दूसरी ओर उजरती गुलामी की व्यवस्था के चलते यह समाज में दुराचार और दासता के ज़हर फैलाने का एक कारण भी बनता है। इस दुराचार और दासता का सामना स्त्री मज़दूरों को ही करना होता है, लेकिन मार्क्स, एंगेल्स या लेनिन इसका उपाय यह कत्तई नहीं बताते कि पूँजीवादी समाज में स्त्रियाँ सार्वजनिक उत्पादन में प्रवेश करने के बजाय घरों में ही कैद रहें। पूँजीवाद के अन्तर्गत भी सामाजिक उत्पादन में औरत-मर्द दोनों की भागीदारी उनके व्यक्तित्व, उनके सम्बन्धों और उनके परिवार को उच्चतर मानवीय रूप देता है। दूसरे, पूँजीवादी शोषण की शिकार स्त्रियों को ही पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ने के लिए संगठित होने की चेतना दी जा सकती है। सर्वहारा आबादी की इस आधे हिस्से की सामाजिक पहलकदमी और सक्रियता के बिना समाजवाद के लिए संघर्ष को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

ऊपर हम चर्चा कर आये हैं कि पूँजीपति ज्यादा से ज्यादा अतिरिक्त मूल्य निचोड़ने के लिए और आपसी प्रतियोगिता में आगे बढ़ने के लिए लगातार नयी मशीनें और नयी तकनोलॉजी लाता जाता है। यानी मशीनी उपकरणों और कच्चे माल पर वह ज्यादा से ज्यादा पूँजी लगाता जाता है और कम से कम मज़दूर लगाकर ज्यादा से ज्यादा काम लेता है। यानी पूँजी की अवयवी संघटन में स्थिर पूँजी (मशीन व कच्चे माल की ख़रीद में लगी पूँजी) का अनुपात परिवर्तनशील पूँजी (श्रमशक्ति की ख़रीद में लगी पूँजी) के मुकाबले लगातार बढ़ता जाता है। इससे श्रमशक्ति की माँग में सापेक्षिक कमी आ जाती है। छँटनी और बेरोज़गारी बढ़ जाती है।

पूँजी-संचय आगे बढ़ने के साथ ही श्रमशक्ति की आपूर्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है। मशीनें, स्त्रियों और बच्चों को भी उजरती मज़दूरों की कतार में शामिल कर लेती हैं। साथ ही पूँजी- संचय की प्रक्रिया छोटे किसानों और अन्य छोटे माल-उत्पादकों को भी दिवालिया बनाकर अपनी श्रमशक्ति बेचने के लिए मजबूर कर देती है। नतीजतन, पूँजीवादी समाज में सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी बेरोजगारों-अर्धबेरोजगारों की भारी जमात के रूप में मौजूद रहती है। यह आबादी वास्तव में ''फालतू'' नहीं होती क्योंकि उत्पादन के साधनों पर यदि समाज का नियंत्रण हो और उत्पादन का लक्ष्य यदि मुनाफ़ा न होकर सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति और सामाजिक प्रगति हो तो समस्त उत्पादक आबादी लगातार उत्पादक कार्रवाई करके समाज को प्रगति की नयी चोटियों तक पहुँचाती रहेगी। पूँजीवादी समाज में पूँजी-संचय की प्रक्रिया सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी पैदा करती है। यह सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी तीन प्रकार की होती है: पहली, वह सचल अतिरिक्त आबादी होती है, जो औद्योगिक केन्द्रों में इस या उस कारख़ाने से बाहर किये जाने के बाद इधर-उधर भटकती रहती है और जहाँ जो भी काम मिल जाये, करने को तैयार रहती है। दूसरी, वह छिपी हुई अतिरिक्त आबादी होती है, जो कृषि के पूँजीवादीकरण के बाद खेती से उजड़ तो जाती है, पर विस्थापित होकर शहर आने के बजाय गाँव में ही ज़मीन के छोटे से टुकड़े से चिपकी रहती है, कुछ इधर-उधर काम करके पेट पालती है और कभी-कभार शहर आकर भी मज़दूरी कर लेती है। तीसरी, स्थिर अतिरिक्त आबादी होती है जो घरेलू काम-काज करती है और कभी-कभार कुछ इधर-उधर के छोटे-मोटे काम कर लेती है (जैसे कि पीस रेट पर घर लाकर भी कुछ काम कर लेती है)। इस आबादी का कोई स्थायी पेशा नहीं होता। मज़दूर परिवारों की औरतों का बड़ा हिस्सा इसी श्रेणी में आता है। सभी चूल्हे-चौकठ की गुलामी करती हैं। परिवार चलाना दूभर हो जाता है तो पीस रेट पर घर लाकर या कारख़ाने जाकर कोई काम कर लेती हैं, कभी दिहाड़ी मज़दूरी कर लेती हैं।

यह ''फालतू'' आबादी पूँजी-संचय की प्रक्रिया का नतीजा होती है और फिर इन्हें ही पूँजी-संचय की प्रक्रिया का एक औजार बना दिया जाता है। बेरोज़गारों की भारी आबादी की मौजूदगी को ''ट्रम्पकार्ड'' की तरह इस्तेमाल करते हुए कारख़ानेदार अपने मज़दूरों को धमकाते हैं और उनकी मज़दूरी उस हद तक कम कर देते हैं कि उनकी न्यूनतम ज़रूरतें भी पूरी नहीं हो पातीं और पूँजीवादी क़ानून मज़दूरों को जो हक़ एवं सहूलियतें देते हैं, उन्हें भी छीन लेते हैं। तंग आकर मज़दूर यदि हड़ताल पर जाते हैं तो बाहर जो बेरोज़गारों की विशाल ''औद्योगिक रिज़र्व फ़ौज'' मौजूद रहती है, उनकी मजबूरी एवं पिछड़ी वर्गचेतना का लाभ उठाकर उन्हें 'स्ट्राइकब्रेकर' के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है।

इस प्रकार पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग के एक हिस्से को ही दूसरे हिस्से के ख़िलाफ़ खड़ा कर देता है, वर्ग एकजुटता को तोड़ देता है और यही उसका ब्रह्मास्त्र होता है। इस ब्रह्मास्त्र का मुकाबला बुर्जुआ और अर्थवादी ट्रेडयूनियनों के शिखण्डी कर ही नहीं सकते। मज़दूरों की लड़ाई को वे केवल आर्थिक लड़ाई तक सीमित रखते हैं, (उन्हीं के चन्दे से उनका धंधा चलता है) और संकीर्ण आर्थिक दायरे में सोचते हुए हड़ताली मज़दूर बाहर के बेरोज़गार मज़दूरों को अपना दुश्मन मान बैठते हैं। जो ट्रेडयूनियन नेतृत्व होता है, वह कारख़ानों के बाहर सड़कों-बस्तियों में भटकते बेरोज़गार या अर्द्ध-बेरोज़गार मज़दूरों को शिक्षित-संगठित करके पूँजी के ख़िलाफ़ वर्गीय एकजुटता की शिक्षा देने की ज़रूरत ही नहीं समझतौ (इसमें उन्हें अपना कोई फ़ायदा भी तो नहीं दीखता!)। जो हड़ताली मज़दूर होते हैं, प्राय: तो वे अपने ही कारख़ाने के ठेका मज़दूरों या अस्थायी मज़दूरों को भी साथ लेने की कोशिश नहीं करते। वे उन्हें अपने लिए सम्भावित प्रतिस्पर्द्धी और खतरा के रूप में देखते हैं।

जो स्थिर ''अतिरिक्त आबादी'', यानी स्त्रियों की आबादी है, उसकी दुर्गति सबसे अधिक होती है। एक की कमाई से परिवार चलाना असम्भव होने पर जब वे श्रम बाज़ार में उतरती हैं तो उन्हें पुरुषों से कम मज़दूरी पर ज्यादा कठिन काम दिये जाते हैं, जिनमें मांसपेशियों की ताकत भले कम लगे पर एकाग्रता एवं एकरसता की दृष्टि से वे काफी कठिन होते हैं और स्वास्थ्य पर सर्वाधिक नुकसानदेह असर डालते हैं। पुरुष मज़दूर उन्हें अपने प्रतिस्पर्धी के रूप में देखते हैं और उनकी किसी भी माँग पर प्राय: साथ नहीं आते। ''घर की दासी'' और ''यौन गुलाम'' को बाहर अपने बाजू में काम करते देख उनके अन्दर का ''मर्द'' वन्य पशु की तरह जाग उठता है और साथी स्त्री मजदूरों को प्राय: वे भी (मालिक-मैनेजर-सुपरवाइज़र तो करते ही हैं) भद्दे अश्लील फिकरों-इशारों का शिकार बनाते रहते हैं।

और फिर इन्हीं में से एक पुरूष मज़दूर जब अपने घर जाता है तो अपनी बीवी और बेटी को कारख़ाने के गन्दे माहौल से बचाने के लिए भरसक घर में ही पीसरेट पर काम करने के लिए प्रेरित करता है। इससे दो चीज़ें होती हैं। एक तो परिवार में चूल्हे-चौकठ, बाल-बच्चे का सारा काम औरत के ही सिर पड़ा रहता है (वैसे ज्यादातर कारख़ाने जाने वाली औरतों को भी घर का पूरा काम-काज स्वयं ही करना पड़ता है), दूसरे, घर में कुछ अतिरिक्त कमाई आ जाती है। एक वर्ग चेतनाहीन पुरुष मज़दूर अपनी स्त्री की श्रमशक्ति की कीमत और पीस रेट पर काम करने के चलते सभी श्रम अधिकारों से वंचित होने की उसकी स्थिति के बारे में नहीं सोचता। वह यह भी नहीं सोच पाता कि उसके घर की स्त्री जब घर से बाहर निकलकर सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में उतरेगी तो अपने जैसी स्त्री मज़दूरों के साथ मिलकर अपने हक़ों के लिए लड़ेगी और समूचे मज़दूर वर्ग के साथ मिलकर सभी वर्गीय हक़ों के लिए लड़ते हुए मज़दूर संघर्ष की ताक़त को दूनी कर देगी।

जो अर्थवादी-सुधारवादी चवन्नीछाप गीदड़ ट्रेडयूनियन नेता हैं; अव्वलन तो वे व्यापक मज़दूर एकता चाहेंगे ही क्यों? यह उनके हित के ख़िलाफ़ है! दूसरे, उनके कलेजों में इतना दम भी नहीं होता कि अपने आसन्न आर्थिक हितों को लेकर एकदम नाक के ठीक आगे तक देखने वाली आम मज़दूर आबादी को ओजस्वी ढंग से ललकारकर उसे पूँजी के ख़िलाफ़ श्रम की व्यापक एकजुटता के दूरगामी परिणामों और मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन के बारे में बता सकें तथा यह समझा सकें कि सभी असंगठित (ठेका व दिहाड़ी) तथा कारख़ाना गेट के बाहर, सड़कों पर बस्तियों में, मौजूद बेरोजगार सर्वहाराओं को साथ लेकर, स्त्री मज़दूरों की आधी आबादी को साथ लेकर, अपने घरों की स्त्रियों को सामाजिक उत्पादन और संघर्ष की दुनिया में उतारकर ही वे प्रभावी ढंग से संघर्ष कर सकते हैं और जीत सकते हैं। यह बात भूमण्डलीकृत पूँजीवाद के वर्तमान दौर में पहले हमेशा की अपेक्षा कई गुना अधिक लागू होती है।

यह कहना अनुचित या गलत नहीं होगा कि मज़दूर आन्दोलन की दुनिया में अर्थवाद का मर्दवाद से एक प्रकट-अप्रकट अपवित्र गठबंधन होता है। पुरुष मज़दूर संकीर्ण आर्थिक हितों के दायरे से बाहर व्यापक वर्गीय मुक्ति के ऐतिहासिक प्रश्न पर सोचेगा तभी वह समाज में स्त्री मज़दूरों को प्रतिस्पर्धी नहीं बल्कि संघर्ष का सहयोद्धा मानेगा, तभी वह अपने घरों की स्त्रियों को भी न केवल सामाजिक उत्पादन मे बल्कि आर्थिक-सामाजिक आन्दोलनों में उतरने के लिए प्रेरित करेगा। इस बात की चर्चा हम पहले कर चुके हैं कि यदि स्त्री और बच्चे भी काम पर जाते हैं तो उनकी मज़दूरी उनकी संयुक्त आमदनी में जुड़ जाती है और इससे पूरी श्रमशक्ति सस्ती हो जाती है। इसके बावजूद मार्क्स और एंगेल्स ने स्त्रियों के घर में रहकर सामाजिक सरोकारों से अलग-थलग पड़े रहने की जगह सामाजिक उत्पादन में उनकी भागीदारी पर बल दिया।

सामाजिक उत्पादन में भागीदारी करते हुए ही स्त्री सर्वहाराओं की आधी आबादी आर्थिक-राजनीतिक संघर्षों की भागीदार बन सकती है और मज़दूर मुक्ति के ऐतिहासिक संघर्ष की सफलता की यह एक बुनियादी गारण्टी है।

"...जनवादी गणतन्त्र (नागरिकों के बीच) सम्पत्ति के भेदों का औपचारिक रूप से कोई लिहाज़ नहीं करता। उसमें सम्पदा अपनी शक्ति का परोक्षत:, परन्तु और भी निश्चित रूप से, उपयोग करती है। एक ओर, इस रूप में कि वह अधिकारियों को सीधे भ्रष्ट करती है (जिसका क्लासिकीय उदाहरण अमेरिका पेश करता है), दूसरी ओर, सरकार तथा स्टॉक एक्सचेंज में गठबन्धन के रूप में।"

– एंगेल्स (परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति)

"जनवादी गणतन्त्र "तर्क की दृष्टि से" पूँजीवाद का विरोधी है, क्योंकि "औपचारिक रूप से" वह अमीर और ग़रीब को बराबरी का दर्जा देता है। अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक ऊपरी ढाँचे के बीच यह एक अन्तरविरोध है। साम्राज्यवाद तथा गणतन्त्र के बीच भी यही अन्तरविरोध है, जो इस वजह से और भी गहरा और तीखा हो गया है कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता से एकाधिकार में रूपान्तरण सभी राजनीतिक स्वातन्त्र्यों की प्राप्ति को और भी "दुष्कर" बना देता है।

तब फिर जनवाद के साथ पूँजीवाद की संगति कैसे बैठायी जाती है? पूँजी की सर्वशक्तिमत्ता को परोक्ष रूप से क्रियान्वित करके! इसके दो आर्थिक साधन हैं : 1) सीधे-सीधे रिश्वत देना; 2) सरकार तथा स्टॉक एक्सचेंज का गठबंधन। (यह बात हमारी प्रस्थापनाओं में इस तरह कही गयी है: पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत वित्तीय पूँजी "किसी भी सरकार को और किसी भी अधिकारी को आज़ादी के साथ रिश्वत दे सकती है और ख़रीद सकती है"।) अगर माल-उत्पादन का, बुर्जुआ वर्ग का, पैसे की शक्ति का बोलबाला है, तो रिश्वतख़ोरी (सीधे-सीधे या स्टॉक एक्सचेंज की मार्फ़त) किसी भी तरह की सरकार के अन्तर्गत, किसी भी तरह के जनवाद के अन्तर्गत "सम्भव" है।

– लेनिन (मार्क्सवाद का विद्रूप और साम्राज्यवादी अर्थशास्त्र)

कम्युनिस्ट पार्टी की ज़रूरत के बारे में लेनिन के कुछ विचार...

(साथियो, इस समय पूरे देश बल्कि कहना चाहिए कि पूरी दुनिया के मज़दूर आन्दोलन के भीतर गैरपार्टी क्रान्तिवाद की सोच नये सिरे से सिर उठा रही है। जगह-जगह कुछ राजनीतिक नौदौलतिये पैदा हुए हैं जो यह दावा कर रहे हैं कि मज़दूर वर्ग को पार्टी की ज़रूरत नहीं है; या पार्टी ऐसी होनी चाहिए जो मज़दूर वर्ग के पीछे-पीछे चले; या पार्टी ऐसी होनी चाहिए जो मज़दूर वर्ग को नेतृत्व न दे, बस उसे सलाह-मशविरा दे। ऐसी रुझानों का लेनिन ने अपने समय में पुरज़ोर विरोध करते हुए बताया था कि इतिहास में कभी कोई भी वर्ग बिना अपने हिरावल के न तो विरोधी वर्ग का तख्तापलट करके क्रान्ति कर पाया है, और न ही कोई वर्ग बिना अपने हिरावल के शासन सम्भाल पाया है। ऐसा दावा करने वाले लोग अराजकतावादी संघाधिपत्यवाद, अराजकतावाद और विसर्जनवाद के शिकार हैं। आज पार्टी की ज़रूरत हमेशा से ज़्यादा है और ऐसे समय में पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा की हिफ़ाज़त करना हर प्रतिबद्ध कम्युनिस्ट का कर्तव्य है। ऐसे दौर में हमें लेनिन के निम्न दो उद्धरण बेहद प्रासंगिक लगे। - सम्पादक)

"पूँजीवाद के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि नेतृत्व करने वाली (कम्युनिस्ट) पार्टी, क्रान्तिकारी वर्ग (सर्वहारा वर्ग), तथा आम जनता, अर्थात मेहनतकशों और शोषितों के सम्पूर्ण जनसमुदाय के बीच उचित सम्बन्ध कायम किये जायें। केवल कम्युनिस्ट पार्टी–यदि क्रान्तिकारी वर्ग का सचमुच वह हिरावल दस्ता है, यदि उसके अन्दर उस वर्ग के श्रेष्ठतम प्रतिनिधि सचमुच मौजूद हैं, यदि पूर्ण रूप से सचेत, पक्के और कम्युनिस्ट सचमुच उसमें शामिल हैं–जिनकी अनवरत क्रान्तिकारी संघर्ष के अनुभव द्वारा शिक्षा-दीक्षा हुई है और उसी में फौलादी बने हैं–यदि अपने वर्ग, और, उसके जरिये, शोषितों के जनसमुदाय के सम्पूर्ण जीवन के साथ अटूट रूप से अपना सम्बन्ध स्थापित करने तथा इस वर्ग और इस जनसमुदाय का पूरे तौर से विश्वास प्राप्त करने में वह सफल हुई है–तो केवल ऐसी ही पार्टी पूँजीवाद की तमाम ताक़तों के विरुद्ध अन्तिम, महानिर्मम तथा निर्णायक संघर्ष में सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व करने में सक्षम हो सकती है। दूसरी तरफ़, केवल एक ऐसी ही पार्टी के नेतृत्व में सर्वहारा वर्ग अपने क्रान्तिकारी आक्रमण की पूरी भीषण शक्ति का प्रदर्शन कर सकता है, और मज़दूरों में अभिजात वर्ग की, उनके उस छोटे अल्पमत की–जिसे पूँजीवाद ने ध्वस्त कर दिया है–यानी ट्रेड यूनियनों और सहकारी समितियों के नेताओं, आदि की अनिवार्य जड़ता को तथा यदा-कदा उठने वाले उनके प्रतिरोध को कुचल सकती है। सर्वहारा वर्ग केवल ऐसी ही पार्टी की रहनुमाई में अपनी उस पूरी शक्ति का प्रदर्शन कर सकेगा जो, पूँजीवादी समाज के आर्थिक ढाँचे की ही वजह से, आबादी में उसके अनुपात की अपेक्षा कहीं अधिक है। अन्त में, पूँजीपति वर्ग और राजसत्ता की पूँजीवादी मशीन के जुए से सचमुच मुक्त हो जाने के बाद भी, अपनी सोवियतों में सचमुच मुक्त ढंग से (शोषकों से मुक्त रहते हुए) अपने को संगठित करने का अवसर पाने के बाद भी, जनसमुदाय, अर्थात श्रमजीवी और शोषितों का पूरा समुदाय, इतिहास में पहली बार उन करोड़ों लोगों की पहलकदमी और शक्ति का पूरा जौहर दिखला सकता है, जिन्हें पूँजीवाद ने कुचल डाला है। सोवियतों के एकमात्र राजकीय यन्त्र बन जाने के बाद ही इस बात की पक्की गारण्टी हो सकती है कि प्रशासन के काम में शोषितों का पूरा जनसमुदाय, वह जनसमुदाय भाग ले जिसे अधिक से अधिक प्रबुद्ध और स्वतन्त्र पूँजीवादी जनतन्त्र के अन्तर्गत भी हमेशा प्रशासन के काम में भाग लेने से निन्यानबे प्रतिशत अलग रखा गया है। समाजवादी निर्माण करने, नये सामाजिक अनुशासन तथा मुक्त मज़दूरों के एक मुक्त संघ की सृष्टि करने के काम को वास्तव में केवल सोवियतों के अन्दर ही शोषित जनसमुदाय सीखना शुरू करते हैं–ऐसा वह किताबों के जरिये नहीं, बल्कि स्वयं अपने व्यावहारिक अनुभवों के जरिये करते हैं।" (सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व सोवियत सत्ता का सार)

"साथियो, साथी टैनर और साथी मैक्लेन के भाषणों के सम्बन्ध में मैं चन्द बातें करना चाहूँगा। टैनर कहते हैं कि वे सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के पक्ष में हैं किन्तु सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को वह ठीक उसी तरह नहीं समझते जिस तरह हम समझते हैं। वह कहते हैं कि सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व से दरअसल हमारा मतलब सर्वहारा वर्ग के संगठित तथा वर्ग चेतन अल्पमत का अधिनायकत्व होता है।

"बिल्कुल सही है। पूँजीवाद के युग में, जबकि मज़दूर जनता निरन्तर शोषण की चक्की में पिसती रहती है और अपनी मानवीय क्षमताओं का विकास वह नहीं कर पाती है, मज़दूर वर्ग की राजनीतिक पार्टियों की सबसे ख़ास विशेषता यही होती है कि अपने वर्ग के केवल एक अल्पमत को ही वह अपने साथ ला पाती है। कोई भी राजनीतिक पार्टी अपने वर्ग के केवल एक अल्पमत को ही अपने अन्दर समाविष्ट कर सकती है। उसी तरह जिस तरह कि किसी भी पूँजीवादी समाज में वास्तविक रूप से वर्ग चेतन मज़दूर तमाम मज़दूरों का मात्र एक अल्पमत होते हैं। इसलिए इस बात को मानने के लिए हम बाध्य हैं कि मज़दूरों के व्यापक जनसमुदायों का निर्देशन और नेतृत्व केवल यह वर्ग चेतन अल्पमत ही कर सकता है। और यदि साथी टैनर कहते हैं कि पार्टियों के वे ख़िलाफ़ हैं, किन्तु साथ ही साथ इस बात का वे समर्थन करते हैं कि वह अल्पमत ही, जो सबसे अच्छी तरह से संगठित और सर्वाधिक क्रान्तिकारी मज़दूरों का प्रतिनिधित्व करता है, सम्पूर्ण सर्वहारा वर्ग का पथ प्रदर्शन करे, तो मैं कहता हूँ कि वास्तव में हमारी और उनकी बात में कोई फर्क नहीं है।

"यह संगठित अल्पमत है क्या? यदि यह अल्पमत सचमुच वर्ग चेतन है, यदि वह जनसमुदायों का नेतृत्व कर सकता है, यदि वह उस हर समस्या का जो दैनंदिन उठती हैं समाधान प्रस्तुत कर सकता है, तो दरअसल वह एक पार्टी ही है। परन्तु, यदि टैनर की तरह के साथी जिनकी बात की तरफ़ हम विशेष ध्यान देते हैं, कि वह एक जनान्दोलन के प्रतिनिधि हैं–जो चीज़ कि, बिना अतिशयोक्ति किये, ब्रिटिश सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती–यदि ये साथी एक ऐसे अल्पमत के समर्थक हों जो सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के लिए दृढ़तापूर्वक लड़ेगा और मज़दूरों के जनसमुदायों को इसी दिशा में शिक्षित करेगा, तो यह अल्पमत दरअसल एक पार्टी के अलावा और कुछ भी नहीं है। साथी टैनर कहते हैं कि इस अल्पमत को मज़दूरों के सम्पूर्ण जनसमुदाय को संगठित करना चाहिए और उसका नेतृत्व करना चाहिए। यदि साथी टैनर और कारखानाई प्रतिनिधियों के दल व "दुनिया के औद्योगिक मज़दूरों" के दूसरे साथी इस बात को स्वीकार करते हैं– और उससे रोज़ाना जो हमारी बातें हुई हैं उनसे जाहिर है कि वे इसे निश्चित रूप से स्वीकार करते हैं–यदि वे इस विचार का अनुमोदन करते हैं कि मज़दूर वर्ग का वर्ग चेतन कम्युनिस्ट अल्पमत सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व करता है, तब उन्हें इस बात से भी सहमत होना चाहिए कि हमारे समस्त प्रस्तावों का भी ठीक यही अर्थ है। वैसी हालत में, हमारे बीच केवल यही अन्तर रह जाता है कि वे "पार्टी" शब्द से कतराते हैं। इसकी वजह यह है कि ब्रिटेन के साथियों के अन्दर राजनीतिक पार्टियों के सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार का अविश्वास भाव है। राजनीतिक पार्टियों की बात से उनके दिमाग़ में केवल गॉम्पर्स और हेण्डरसन की पार्टियों, व्यवसायपटु संसदीय व्यापारियों और मज़दूर वर्ग के ग़द्दारों की पार्टियों की ही तस्वीर बन पाती है। किन्तु, पार्लियामेण्टवाद (संसदवाद) से उनका अर्थ यदि उसी से है जो आज ब्रिटेन और अमेरिका में दिखलायी देता है, तो इस तरह के पार्लियामेण्टवाद और इस तरह की राजनीतिक पार्टियों के ख़िलाफ़ तो हम भी हैं। हम नयी और भिन्न प्रकार की पार्टियाँ चाहते हैं। हम ऐसी पार्टियाँ चाहते हैं जो जनसमुदायों के साथ लगातार और वास्तविक सम्पर्कों में रहें तथा उन जनसमुदायों का नेतृत्व कर सकें।"

(कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की द्वितीय कांग्रेस में कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका के सम्बन्ध में भाषण)

आपस की बात

(पेज 2 से आगे)

वाली हूँ। मेरी पिछले साल जुलाई 2011 में शादी हुई। और मेरे पति हमें सितम्बर में दिल्ली के समयपुर बादली इलाके में ले आये जहाँ ये काम करते हैं। हमारे आने के पहले मेरे पति एक कमरे में दो-तीन लोगों के साथ साझे में रहते थे जिससे क़रीब 2500 रुपये बचाकर घर भी भेज देते थे। अब जब से मैं आ गयी हूँ तब से घर का सारा किराया (1500) और ऊपर से हमारा खर्चा इन्हीं के ऊपर आ गया है। अब ये एक भी छुट्टी नहीं मारते और 4 घण्टा ओवरटाइम और लगाने लगे हैं। अब तो रविवार को भी ओवरटाइम लगा लेते हैं। हमको कहते हैं कि तुमको कोई दिक्कत नहीं होने देंगे, हमेशा खुश रखेंगे। और खुद इतना कष्ट उठाते हैं। मैंने एक दिन कहा भी कि हम घर में अकेले परेशान हो जाती हैं। हमें भी काम पर लगा दो हम लोग आठ-आठ घण्टा काम करेंगे और आराम से रहेंगे। तो बहुत नाराज हो गये और हमको डाँट दिये और कहा अभी मैं मर नहीं गया हूँ कि तुमसे काम कराऊँ। उस दिन हम बहुत रोये थे कि मेरी वजह से इन्होंने मरने-जीने की बात कही थी। हमारी वजह से न तो ये खुश और न ही हम। ये 12 घण्टे काम करके एकदम थक जाते हैं और बस रोटी का ही इंतजाम हो जाता है। इनकी तनख्वाह आठ घण्टा का 4 हजार रुपये हैं और महँगाई इतनी कि भगवान बचाये। इनके रुपये कमाने के चक्कर में हमारी और इनकी नौजवानी खत्म हो रही है। न तो हमें कोई शारीरिक सुख और न इनको भी। ये अपनी मूँछें और मान-मर्यादा बचाये अच्छी-खासी स्वस्थ औरत को परदे में कैद कर रखे हैं। और यूँ ही ये खत्म हो जायेंगी।

मेरा देवर भी अपने दोस्तों के साथ यहीं रहता है। वह अक्सर शहीद पुस्तकालय राजा विहार में जाता है। मेरा देवर ही एक दीदी से हमको मिलाया था जो कि महिलाओं का संगठन बनाने का काम करती हैं। उनके संगठन का नाम है 'स्त्री मज़दूर संगठन'। दीदी ने हमको और मेरे पति दोनों को समझाया कि कोई लूला, लँगड़ा या बीमार व्यक्ति हो तो उसकी सेवा करना ठीक भी है। मगर एक अच्छी-खासी महिला की दुनिया सिर्फ कमरे तक ही समेटकर उसको बीमार करने में क्यों लगे हो। अभी तुम अकेले दोनों लोगों का खर्चा उठाते हो। ज़्यादा मेहनत करते हो। दोनों मिलकर काम करो। आठ-आठ घण्टे भी काम करोगे तो सोलह घण्टे हो जायेंगे और मिल-बाँटकर घर का काम करो, एक-दूसरे को ज्यादा समय दो, प्यार करो और एक अच्छी ज़िन्दगी जिओ। अभी आप 12 घण्टे काम करके थक जाते हैं ओर ये कमरे में पड़े-पड़े रहकर थक जाती हैं। ये बात मेरे पति को समझ में आ गयी। और अब हम दोनों मिलकर कमाते हैं। आठ घण्टा काम करते हैं। टीवी भी ले लिया है। रविवार को सिनेमा भी देख आते हैं। कभी छुट्टी मारकर दिल्ली भी घूम आते हैं। और हम दोनों एक-दूसरे के जीवनसाथी बनकर एक अच्छी जिन्दगी जी रहे हैं। हमको ज़्यादा पढ़ना-लिखना नहीं आता तो दीदी हमें हर शुक्रवार को शहीद पुस्तकालय में शाम 6 बजे पढ़ाती हैं। मगर हम ये चिट्ठी अपने देवर से लिखा रहे हैं।

रीना देवी, बादली

रणवीर की आपबीती

मासू इण्टरनेशनल, बादली में मैं काम करता हूँ। रणवीर शाहजहाँ पुर उ.प्र. का रहने वाला है। आज फैक्ट्री सुपरवाइजर सरदार ढिलन सिंह के तेवर रणवीर के खिलाफ सख़्त थे। बेचारे रणवीर को क्या पता कि आखिर कौन सी क़यामत आई है। रणवीर रोज जितना काम करता था। आज उससे तीन गुना काम उस पर पड़ रहा है। क्या आज सरदार ढिलन सिंह सुबह-सुबह ही 4 पैग ज़्यादा लगाकर आये हैं। नहीं ऐसा नहीं है।

आखिर शाम तक रणवीर जी की हालत खस्ता हो गई। वैसे तो रणवीर रोज ओवरटाइम व नाइट नहीं छोड़ता था। मगर आज 5.30 बजे ही छुट्टी करने का निर्णय लिया है। मगर रणवीर ने यह भी निर्णय किया कि इस क़यामत का राज जानकर ही जाऊँगा।

रणवीर – सर जी, हमसे कोई ग़लती हो गई जो आज आपने हमको टारगेट बना लिया।

ढिलन सिंह – अब आयी तेरी अकल ठिकाने। अब बताता हूँ। ऐसा क्यों किया। कल तूने सी.आई.टी.यू. के कार्यकर्ता त्यागी के सामने कारीगरों के साथ यूनियन लगाने के लिए अपना नाम क्यों लिखाया। अभी तुझे आये दो महीने भी हुए नहीं और चला यूनियन करने।

रणवीर – अरे सर जी, हमे क्या पता था। नाम लिखाने से मेरी यह गति होगी। आप ही बतायें हम क्या करें।

ढिलन सिंह – हाँ, बेटा अब एक अप्लीकेशन लिख कि यूनियन में हमारा नाम फ़र्जी है। और हमें यूनियन से कोई मतलब नहीं। और जाकर मालिक 'वॉबी' के पास जमा करो।

रणवीर – ठीक है! सर जी हम अभी लिखते हैं। मगर एक बात बताइये सर जी यूनियन में नाम तो कल शाम छुट्टी के बाद लिखवाया था। मगर आज सुबह से ही यह बात आप तक कैसे पहुँच गई।

ढिलन सिंह – चिल्लाते हुए – जा, जैसा बताया वैसा कर। फालतू के सवाल पूछा मत कर।

रणवीर सिंह, राजा विहार

RNI No. UPHIN/2010/36551
डाक पंजीयनः SSP/LW/NP - 319/2011-2013
प्रेषित डाकघरः आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथिः दिनांक 20 प्रति माह

बाल ठाकरे : भारतीय फ़ासीवाद का प्रतीक पुरुष

जब तक मेहनतकश आबादी वर्ग के रूप में एकजुट नहीं होगी तब तक ऐसे फ़ासिस्ट दानव पैदा होते रहेंगे

विगत नवम्बर के तीसरे सप्ताह में मुम्बई की फ़िज़ाओं में एक भय मिश्रित सन्नाटा पसरा हुआ था। वजह थी बाल ठाकरे की आसन्न मृत्यु की ख़बर। ख़ौफ़ के इस माहौल में लोग क़यास लगा रहे थे कि जिस शख़्स के जीते जी मुम्बई में भय और आतंक व्याप्त रहता था, उसके मरने के बाद क्या होगा? मीडिया ने भी इस उहापोह भरे माहौल को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ठाकरे की मृत्यु के बाद मीडिया में उनको देश के महान राष्ट्रवादी नेता के रूप में प्रतिष्ठित करने की कवायद शुरू हो गयी। इस प्रहसन की इन्तेहा तो तब हो गई जब जिस व्यक्ति को भारत की सरकार द्वारा गठित श्रीकृष्णा आयोग ने 1992-93 के मुम्बई दंगों में हिंसा भड़काने के आरोप में साफ़ तौर पर दोषी पाया था और जिस व्यक्ति पर साम्प्रदायिक रूप से भड़काऊ बयान देने की वजह से चुनाव आयोग ने चुनाव में भाग लेने और मतदान करने पर 6 साल का प्रतिबन्ध लगाया था, उसका पूरे राजकीय सम्मान के साथ अन्तिम संस्कार किया गया। इस समूचे प्रकरण में मुख्यधारा की मीडिया के अधिकांश हिस्से ने बाल ठाकरे के 4 दशक से भी ज़्यादा लम्बे राजनीतिक जीवनकाल के दौरान आम मेहनतकश जनता के ख़िलाफ़ किये गये बर्बर अपराधों पर निहायत ही बेशर्मी से पर्दा डाला और उनकी शान में कसीदे गढ़े गये। ज़्यादातर टी वी चैनलों और अख़बारों में देश की तमाम जाने माने पत्रकार और बुद्धिजीवी ठाकरे के अपराधों को दरकिनार कर उनकी कार्टूनी कला और करिश्माई व्यक्तित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा करते दिखे। ऐसे में बाल ठाकरे जैसे फ़ासिस्ट तानाशाह के काले कारनामों का पर्दाफ़ाश कर जनता तक उसकी राजनीति के जनविरोधी चरित्र की असलियत को ले जाना एक बेहद ज़रूरी कार्यभार है।

बाल ठाकरे का राजनीतिक जीवन फ़ासीवाद के भारतीय संस्करण के विकास से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। 1950 के दशक के अन्त तक 'नेहरूवादी समाजवाद' (जो वास्तव में राजकीय पूँजीवाद था) की क़लई खुलने लगी थी। ग़रीबी, भुखमरी और बेरोज़गारी के ग्राफ के ऊपर उठने के साथ ही देश के अलग-अलग हिस्सों में जनाक्रोश भी उफ़ान पर था। भारतीय पूँजीवाद के गढ़ बम्बई में यह आक्रोश संयुक्त महाराष्ट्र आन्दोलन के रूप में सामने आया जिसके फलस्वरूप 1 मई 1960 को महाराष्ट्र को गुजरात से अलग कर एक नया राज्य बनाया गया और बम्बई इस नये राज्य की राजधानी बनी।

नया राज्य बनने के बाद भी ग़रीबी और बेरोज़गारी जैसी समस्याओं का कोई निदान न होने की वजह से 1960 के दशक में जनाक्रोश एक बार फिर उफ़ान पर था। यही वह सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि थी जिसमें बाल ठाकरे के राजनीतिक जीवन की शुरुआत हुई। बाल ठाकरे 1950 के दशक के अन्त में 'फ्री प्रेस जरनल' नामक अंग्रेजी अखबार में कार्टूनिस्ट थे। 1960 में इससे अलग होकर ठाकरे ने अपना मराठी अखबार 'मार्मिक ' निकालना शुरू किया। 'मार्मिक' की विशेषता यह थी कि उसमें बेहद भड़काऊ शैली में बम्बई की मराठी आबादी के आक्रोश को हवा दी जाती थी। ग़ौरतलब है कि 'मार्मिक' के भड़काऊ लेखों का निशाना कांग्रेस या उसकी नीतियाँ न होकर बम्बई में रहने वाली गैर-मराठी आबादी हुआ करती थी जिनकी वजह से 'भूमि-पुत्रों' की नौकरी की सम्भावनायें धूमिल हुई दिखती थीं। निशाने पर कभी बम्बई में रहने वाली गुज़राती और मारवाड़ी आम आबादी हुआ करती थी तो कभी दक्षिण भारतीय आम आबादी। इस प्रकार विशेषकर निम्न मध्यवर्गीय मराठी आबादी में बाल ठाकरे ने अपना आधार बनाया जिनको उनके फूहड़पन भरे भड़काऊ भाषणों और लेखों में अपनी कुण्ठित भावनाओं की अभिव्यक्ति दिखती थी। हालाँकि शुरुआत में बाल ठाकरे यह दावा किया करते थे कि उनकी कोई राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं है, परन्तु अपने ही थूके को चाटकर 1966 उन्होंने शिव सेना की स्थापना की।

शुरुआत में शिव सेना की मुख्य माँगें थीं - सरकारी नौकरियों और सरकारी आवासों में मराठियों के लिए 80 फ़ीसदी आरक्षण। अपनी स्थापना के साथ ही शिव सेना ने बम्बई में रहने वाली दक्षिण भारतीय आबादी पर निशाना साधते हुए उनके रेस्तराँ और दुकानों पर तोड़ फोड़ मचानी और शुरू की। इसी दौरान ठाकरे ने 'यान्डू गुण्डू' और 'लुंगी उठाओ पुंगी बजाओ' जैसे फूहड़ नारे रचे जो उनकी फ़ासिस्ट मानसिकता की बानगी पेश करते हैं। 1980 और 1990 के दशक में शिव सेना ने हिन्दुत्व की लहर पर सवारी करते हुए अपना मुख्य निशाना मुसलमानों को बनाया। इस लहर के पीछे हटने के बाद से शिव सेना ने यूपी और बिहार से आकर मुम्बई में बसी प्रवासी मेहनतकश आबादी को अपना नया निशाना बनाया और उस पर हमलों की नई श्रृंखला शुरू की।

बाल ठाकरे और शिव सेना के बारे में आम धारणा यह है कि वे मुम्बई में बसे उत्तर भारतीय मज़दूरों के ही ख़िलाफ़ रहे हैं और मराठी भाषी लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु यह धारणा सही नहीं है। बाल ठाकरे की समूची राजनीति अपने बुनियादी चरित्र से मज़दूर विरोधी रही है और मराठी भाषी मज़दूरों के प्रति भी शिव सेना का रवैया शत्रुतापूर्ण ही रहा है। मज़दूर वर्ग की विचारधारा कम्युनिज़्म के ख़िलाफ़ ठाकरे ने जीवन पर्यन्त कुत्सा प्रचार किया।

बाल ठाकरे की समूचा राजनीतिक जीवन पूँजीवादी शासक वर्गों की सेवा में समर्पित था। अपने शुरुआती दिनों में शिव सेना पूँजीपतियों के लिए भाड़े के लठैतों और सुपारी किलर सरीखा काम करती थी। बम्बई के मज़दूर आन्दोलन की कमर तोड़ने के लिए कांग्रेसी मुख्यमन्त्री वसन्तराव नाइक और बड़े उद्योगपतियों ने शिव सेना के भाड़े के गुण्डों का खुले-आम इस्तेमाल किया। पूँजीपतियों और कांग्रेस सरकार की शह पर आज़ादी के बाद बम्बई की पहली प्रमुख राजनीतिक हत्या 1970 में हुई जब टेक्सटाइल्स मज़दूरों के लोकप्रिय और जुझारू नेता कृष्णा देसाई को शिव सेना के हथियारबन्द गुण्डों ने मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद शिव सेना के गुण्डों ने मज़दूर आन्दोलन से जुड़े कई जुझारू नेताओं पर हमले करके मज़दूर आन्दोलन की जड़ें खोखली कर दीं।

मज़दूरों की वर्गीय एकता तोड़ने के लिए शिव सेना ने मराठी अन्धराष्ट्रवाद का जमकर सहारा लिया। 1968 में शिव सेना ने मज़दूर आन्दोलन में सेंध लगाने के मक़सद से भारतीय कामगार सेना नामक यूनियन बनायी। इस यूनियन का काम मज़दूरों के हितों की बजाय मालिकों के हितों को साधना था। इस यूनियन की मालिक परस्ती तो तब जगजाहिर हो गई 1974 की प्रसिद्ध रेलवे हड़ताल सहित कई प्रमुख हड़तालों का विरोध किया। दत्ता सामन्त के नेतृत्व वाली गिरनी कामगार यूनियन के नेतृत्व में हुए 1982 के प्रसिद्ध टेक्सटाइल्स मज़दूरों के आन्दोलन की कमर तोड़ने में भी शिव सेना की अहम भूमिका थी। ग़ौरतलब है कि गिरनी कामगार यूनियन के ज़्यादातर मज़दूर मराठी भाषी थे, न कि उत्तर भारत से आये हिन्दी भाषी।

बाल ठाकरे का पूँजीवाद और पूँजीपतियों के प्रति समर्पण इस तथ्य से ज़ाहिर हो जाता है कि तमाम राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर अपनी बेबाक टिप्पणियों के लिए मशहूर इस शख़्स ने 4 दशक से भी ज़्यादा लम्बे राजनीतिक जीवन में पूँजीपतियों और कॉरपोरेट घरानों के ख़िलाफ़ कभी भी कोई टिप्पणी नहीं की और भारत के पूँजीपतियों ने भी हमेशा ठाकरे का ज़िक्र तारीफ़ भरे अल्फ़ाज़ में ही किया। बतौर ठाकरे मज़दूरों को पूँजीपतियों का एहसानमंद होना चाहिए क्योंकि उनकी वजह से ही मजदूरों को नौकरी मिलती है और उनका गुज़ारा चलता है।

शिव सेना-भाजपा की गठबन्धन सरकार ने भी अपने कार्यकाल के दौरान देशी और विदेशी पूँजीपतियों को बेहिसाब मुनाफ़ा कमाने और श्रम की लूट की खुली छूट दे दी। कुख़्यात एनॅरान प्रकरण में महाराष्ट्र की आम जनता के हितों को ताक पर रख अमरीकी कम्पनी एनरॉन के सामने घुटने टेकने में इस सरकार ने पुरानी कांग्रेसी सरकार के भी कीर्तिमान तोड़ डाले। इसके अतिरिक्त निजीकरण की प्रक्रिया ने भी इस सरकार के कार्यकाल के दौरान अभूतपूर्व तेजी आयी। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे बुनियादी क्षेत्रों को भी मुनाफ़ा कमाने के मक़सद से निजी क्षेत्र के हवाले कर दिया गया।

बाल ठाकरे की राजनीति के एक विशेषता यह रही है कि उसके निशाने पर हमेशा ग़रीब और वंचित लोग ही रहे। शिव सेना शुरू से ही अपने आपको 'मराठी मानुस' का रहनुमा कहते आये हैं। परन्तु ग़ौर करने वाली बात यह है कि 'मराठी मानुस' से उसका तात्पर्य उच्च जाति वाले मराठी पुरुषों से होता है। महाराष्ट्र की दलित आबादी राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग पाँचवाँ भाग है इस दायरे से बिल्कुल बाहर है। 1974 में बनी दलितों की जुझारू पार्टी दलित पैंथर्स पर शिवसेना के गुण्डों ने कई हमले किये क्योंकि उसके सदस्य खुले रूप में हिन्दू धर्म के प्रतिक्रियावादी और दकियानूसी विचारों का विरोध करते थे। दलित पैंथर के एक नेता भगवत जाधव की हत्या शिव सेना के गुण्डों ने ही की थी।

अस्सी के दशक में महाराष्ट्र के मराठवाड़ा और विदर्भ के ग्रामीण क्षेत्रों में शिव सेना ने दलितों के ख़िलाफ़ अत्याचारों की झड़ी लगा दी। शिव सेना के गुण्डे जाति से दलित खेतिहर मज़दूरों और छोटे किसानों द्वारा गाँवों में बंजर ज़मीन पर कब्ज़े का विरोध किया करते थे और दलितों के घरों और फ़सलों पर हमले किया करते थे। इन हमलों मे कई दलितों की जाने गयीं जिनमें दलित नेता अंबादास सवाणे की हत्या भी शामिल थी।

शिव सेना ने महाराष्ट्र की उच्च जातियों के बीच अपना आधार पुख़्ता करने के मक़सद से मण्डल आयोग की सिफ़ारिशों का उच्च जातीय नज़रिये से विरोध किया। शिव सेना-भाजपा गठबन्धन सरकार के कार्यकाल में भी दलितों पर कई हमले हुए जिनमें रमाबाई नगर की घटना सबसे कुख़्यात है जिसमें पुलिस ने अंबेडकर की मूर्ति को उच्च जातियों द्वारा अपमानित किये जाने के विरोध मे प्रदर्शन कर रहे दलितों पर पुलिस ने बिना किसी उकसावे के एकतरफ़ा गोलीबारी की जिसमें दस लोगों की मौत हो गई और दर्ज़नों घायल हुए। इन सभी घटनाओं से शिव सेना की दलित विरोधी मानसिकता साफ़ ज़ाहिर है। यह बात दीगर है कि हाल के दिनों में अपने सिकुड़ते वोट बैंक को विस्तार देने के लिए हाल के वर्षों में शिव सेना ने पतित दलित नेताओं और बुद्धिजीवियों को अपने साथ लाने की कोशिश की है।

बाल ठाकरे को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भारतीय फ़ासीवाद के नये झण्डाबरदार नरेन्द्र मोदी ने उनको एक 'योद्धा' और 'मार्गदर्शक' बताया। ठाकरे और मोदी जैसे 'योद्धाओं' के द्वारा लड़े गये 'युद्धों' की बर्बर जनविरोधी प्रकृति में समानताओं से साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि ठाकरे ने मोदी का किस दिशा में मार्गदर्शन किया। यह महज़ इत्तेफ़ाक नहीं है कि गुज़रात दंगों के बाद बाल ठाकरे उन चन्द नेताओं में थे जिन्होंने मोदी का खुलकर बचाव और समर्थन किया।

हलाँकि बाल ठाकरे की अभिव्यक्तियों और लेखों में मुस्लिम विरोधी बातें शुरू से पायी जा सकती हैं परन्तु शिव सेना का हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक राजनीति की ओर झुकाव 1980 के दशक में राम मन्दिर आन्दोलन के उभार के साथ हुआ। वैसे तो 1980 के दशक में भी मुस्लिम विरोधी दंगों में शिवसेना का हाथ था परन्तु बाबरी मस्जिद के ध्वस्त होने के बाद हुए बम्बई दंगों ने वहशीपने के पुराने सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये और हफ़्तों तक बम्बई की सड़कों पर मौत का ताण्डव चलता रहा। इन दंगों की जाँच के लिए भारत सरकार द्वारा गठित श्रीकृष्णा आयोग ने बाल ठाकरे को दंगे भड़काने के आरोप में स्पष्ट रूप में दोषी पाया था।

दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र होने का दावा करने वाले भारतीय राज्य ने अपनी पोल खुद ही खोल दी जब उसने बाल ठाकरे जैसे नेता की अन्त्येष्टि पूरे राजकीय सम्मान के साथ की। शिव सेना की समूचा राजनीतिक इतिहास जनवाद विरोधी कारनामों से सराबोर रहा है।

(पेज 9 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006